योग लीला

जीवन झांकी









श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा रोड़ साबरमती अहमदाबाद

संत श्री आशारामजी महाराज

योग लीला

(YOGALEELA-BIOGRAPHY)

परमपूज्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगीराज

संत श्री आशारामजी महाराज

के तपोमय एवं यौगिक चामत्कारिक अनुभवों से पूर्ण

जीवन की संक्षिप्त झाँकी



' निर्भय बनो ! '-पूज्यश्री

* प्रकाशक *

श्री योगवेदान्त सेवा समिति, संतश्री आशाराम आश्रम,

मोटेरा रोड़, साबरमती, अहमदाबाद-५.

YOGALEELA
Biography of Sant Shri Asharamji Maharaj.

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

आवृत्ति प्रथम ९ जुलाई १९७९
श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव २०३५

मूल्य : Rs 5=50

प्रकाशक :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा रोड़, साबरमती–अहमदाबाद–५.

आवरण :
दर्शन प्रिन्टर्स, सलापस रोड़, अहमदाबाद–११.

मुद्रक :
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस
घी कांटा रोड़, अहमदाबाद.

✖ निवेदन ✖

आत्मनिष्ठ महापुरूष कहा करते हैं–

हम वासी उस देश के जहां पारब्रह्म का खेल,
दीया जले अगम का बिन बाती बिन तेल।

उस देश की भाषा बोलते हैं जो यहाँ समझ में नहीं आती और उन्हीं की कृपा हों तो कुछ जिज्ञासु साधकों को उनके इशारे समझ में आते हैं–और वे भी केवल इशारे ही, पूरी भाषा नहीं। उस आत्मानन्द की मस्ती में मस्त पड़े रहने वाले जीवनमुक्त महात्माओं के जीवन का रेखा-चित्र खींचना....समझो, एक बहुत बड़ा दुःसाहस है! और ऐसे दुःसाहस के पश्चात् भी क्या हम उनके जीवन के विभिन्न प्रसंगों के समय को उनकी भावदशाओं को लिपि-बद्ध कर सकने में समर्थ हो पाते हैं...? वस्तुतः सदैव से यह एक बहुत दुरूह कार्य रहा है।

फिर भी जो व्यक्तित्व आज मनुष्य समाज के सम्मुख संसार के पहाड़ से दिखने वाले दुःखों से मनुष्य को परे ले जाकर उनके भीतर छिपे हुए अनन्त अविनाशी आनन्द के झरने की झलकें हस्तामलकवत् अनुभव करा रहा है और पग–पग पर जिज्ञासु साधकों का मार्गदर्शन कर रहा है, जिसके चहुँ ओर अनगिनत भक्तों और साधकों का टोला खड़ा हो चुका है और जो लगातार विस्तार पाता जा रहा

✠ अनुक्रमणिका ✠

भक्तों के भाव



संत श्री आशाराम आश्रम में चेटीचण्ड महोत्सव आदि जो प्रवृत्तियाँ हैं, वे वस्तुतः विचार एवं चिंतन के लिये हैं। उनसे समाज में त्याग, शौर्य, सहनशीलता की वृद्धि होती है। जीवन में अच्छे परिवर्तन होते हैं।

उत्सव आदि कार्यक्रमों का लक्ष्य होता है समाज जीवन को उत्कृष्ट बनाना। इधर आस-पास दारूबन्दी हुई, जुआ खेलना, नशा करना आदि व्यसन छूटे और लोग नैतिक बने-यह सब आश्रम की उपलब्धियाँ हैं।

हम लोग राग, द्वेष, मोह, ममता मत्सर आदि तो लेकर ही पैदा होते हैं, उनसे पर तो हुए नहीं हैं। तो ऐसे संतों के समागम से ही ये दोष दूर होते हैं। ऐसे संतों के आगे झुकने का यही तो सार है। ऐसे संत महात्मा तप करके हमारे जीवन को उन्नत बनाने की कोशिश करते हैं।....

श्री बाबुभाई जसभाई पटेल
मुख्यमंत्री (चीफ मिनिस्टर), गुजरात

लोग मुझे पूछते हैं कि आप यहाँ आश्रम में क्यों आते हैं ?...वैसे मैं यहाँ आता हूँ केवल पूज्य संतश्री की अमृतवाणी सुनने के लिये। मुझे स्वामीजी कहा करते हैं कि आप भी दो शब्द लोगों को सुनाइये। वस्तुतः मैं यहाँ बोलने के लिये नहीं, बल्कि सुनने के लिये ही आता हूँ। बाकी जगह तो हम बोलते रहते हैं-यही तो एक जगह है

सुनने की । और यहाँ आये बिना मैं अपने को रोक भी नहीं पाता, क्योंकि मेरा ऐसा अनुभव है कि आज तक भारत भर में जितने संत-महंतों से मैं मिला हूँ, उनमें मुझे पूज्य स्वामी श्री आशारामजी महाराज में ही उस विशेष 'आत्मिक-आकर्षण' का अनुभव हुआ है, जिसके लिये दुनियाँ के सब लोग दौड़े जा रहे हैं । उसी 'आत्मिक शांति' का लाभ मुझे यहाँ पूज्य श्री के सॉनिध्य में बैठकर मिलता है, इसलिये यहाँ आता रहता हूँ । यह मेरे हार्दिक भावों की अभिव्यक्ति है । ऐसे आत्मनिष्ठ-ब्रह्मनिष्ठ महापुरूषों की अनुभव वाणी का सुनना ही जीवन को सार्थक बनाने वाला सिद्ध होता है...।

मोतीभाई चौधरी
संसद सदस्य (एम. पी.)

विगत ३० वर्षों में कोई ऐसा दिन नहीं आया कि जब मैंने इस समय यानि दोपहर को १२ से २ बजे के बीच में इस भीषण ताप के समय प्रवचन किया हो । मैं विचार कर रहा था कि इधर आने के लिये मैंने स्वीकृति तो दे दी है, पर जा नहीं पाऊँगा; परन्तु स्वामी आशारामजी का आंतरिक प्रेम खेंच लाया । आप इतनी धूप होते हुए भी हजारों की संख्या में यहाँ उपस्थित हुए हैं-यह स्वामीजी के 'आत्मिक आकर्षण' का ही प्रताप है ।

पूज्य स्वामी श्री स्वतंत्रानन्दजी

संत श्री आशारामजी द्वारा लोगों का नैतिक और धार्मिक जीवन ऊँचा उठाने के लिये किये जा रहे सुधारकार्य बहुत महत्वपूर्ण और सराहनीय हैं । आशारामजी ने यहाँ इस जंगल में मंगल बना रखा है । यहाँ से संत श्री द्वारा प्रेरित सुधारकार्य समाज जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन लाएंगे । आप सब बड़े भाग्यशाली हैं जिनको ऐसे महान संत का सांनिध्य मिला है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे संतश्री को ईश्वर लम्बी आयुष्य प्रदान करे- उनको दीर्घजीवी बनाएं ।

श्री कैलाश पीठाधीश्वर महामंडलेश्वर
१००८ स्वामी श्री विद्यानंदगिरिजी महाराज
वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य, कैलाश आश्रम, ऋषिकेश

आशारामजी की एक पुस्तक को पढ़कर मुझे लगा कि ये कोई मस्त फकीर हैं। इनसे अवश्य मिलना चाहिये। इसलिये यहाँ चला आया । अहो! कैसा मनोहारी पवित्र वातावरण है यहाँ ! यह स्थान तो बड़ा सुहावना है । यहाँ अधिक रुकूँ इतना समय भी नहीं है, फिर भी एकदम जाने की भी इच्छा नहीं हो रही है । आप सबके बड़े पुण्य कर्म उदय हुए हैं जो आपको आशारामजी जैसे संत मिले हैं । आप स्वामीजी के संग का पूरा-पूरा लाभ उठावें ।

पूज्य श्री वैरागी बाबा
कृष्णधाम, वृंदावन (जि. मथुरा) यू. पी.

आध्यात्मिकता की सर्वोत्कृष्ट अवस्था पर पहुँचे हुए प्रातःस्मरणीय संत श्री आशारामजी से हमारा मिलन तो थोड़े ही समय हुआ, परन्तु मिलने से लगा जैसे हम सजातीय हैं-एक ही कुटुम्ब के हैं। ऐसे जाग्रत आत्मनिष्ठ महापुरूष के सांनिध्य में रहकर हम भी जाग्रत हो सकते हैं।

पूज्यश्री शंकर महाराज
उनाववाला, गुजरात

सच्ची बात तो संत ही कहते हैं। वो तो फकीराबाद हैं। हमारे संत आशारामजी ऐसे ही समर्थ संत हैं। उनसे कुछ न कुछ लो, नहीं तो समय निकल जाएगा और तुम पछताते रह जाओगे। तुम साधक हो, अकेले-अकेले साधना करोगे तो भटक सकते हो, मगर अपने सांई आशारामजी को पकड़ रखोगे तो साधना में सफल हो जाओगे।

संत की जयंति मनाने के इस अवसर पर कुछ न कुछ त्याग करोगे तभी संत की जयंति मनाना सार्थक होगा। आपके अन्दर कुछ दुर्गुण हो तो उनका त्याग करो। हमारे जो महान् सांई बाबा है- संत आशारामजी हैं जिनकी हमें प्राप्ति हुई है उनको हम खूब खूब मन से माने, तन मन धन से उनकी सेवा करें। आपके पास धन हो तो धन से, मन हो तो मन से, कर्मशक्ति हो तो कर्म करके उनकी सेवा करें। हम आशारामजी को इस जन्म जयंति पर खूब खूब बधाई देते हैं।

आयुर्वेदाचार्य पूज्य स्वामी श्री मंगलानन्दजी महाराज
गीता मंदिर अहमदाबाद.



अनंत-अनंत हृदयों में आत्मिक शांति का संचार करनेवाले
परम पूज्य संत श्री आशारामजी महाराज



हम किधर जा रहे हैं ?....यदि हमने संसार का सब कुछ जान लिया, परंतु संसारसे तरना नहीं जाना तो सब व्यर्थ हो जायेगा।

– पूज्यश्री

योगलीला

मानव मात्र अपने परम लक्ष्य 'आत्मिक' शांति के लिये प्रयत्नशील है। जो लोग इस परम लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं, उसी में रमण करते हैं, जिनका अन्य कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है, जिनको अपने लिये करने को कुछ बचा ही नहीं, जिनका अस्तित्व मात्र लोक-कल्याणकारी बना हुआ है–ऐसे लोग संत महापुरुष कहलाते हैं, क्योंकि उनमें संतत्व खिल उठा है। महान् इसलिये क्योंकि वे सदैव महान् तत्त्व 'आत्मा' में अर्थात् अपने आत्मस्वरूप में स्थित होते हैं।

यही महान् तत्त्व अर्थात् आत्मतत्त्व जिस मानवशरीर में खिल उठता है वह मानव शरीर फिर सामान्य मानव शरीर नहीं कहलाता। फिर उसे कोई भगवान बुद्ध कहता है तो कोई महावीर स्वामी, कोई महर्षि वसिष्ठ तो कोई समर्थ गुरु रामदास, कोई मोहम्मद तो कोई क्राइस्ट, कोई रामतीर्थ तो कोई विवेकानन्द। फिर वह हाड़ मांस का

शरीर तो क्या, उसके सम्पर्क में रहनेवाली जड वस्तुएं दंड, कमंडल, वस्त्र, पादुकाएं भी पूज्य बन जाती हैं।

इस अवनीतल पर विशेष करके इस भारत भूमि का तो सौभाग्य ही रहा है कि यहाँ अति प्राचीन काल से लेकर आज तक ऐसी दिव्य विभूतियों का अवतरण होता ही रहा है। आधुनिक काल में भी यह संत अवतरण की दिव्य परम्परा अवरूद्ध नहीं हुई है। आज भी ऐसे महान संतों से यह तपोभूमि भारत वंचित नहीं है-यह हमारे एवं मानव जाति के लिये परम सौभाग्य की बात है।

परम पूज्य संत श्री आशारामजी महाराज भी संतों की ऐसी मनोहर पुष्पमालिका के एक विकसित खिले हुए पुष्प हैं।

पूज्यश्री का जन्म

पूज्यश्री का जन्म पावन सिंधु नदी के तट पर बसे हुए नवाबशाह जिले के एक गांव बेराणी में नगरसेठ श्री थाऊमल सिरुमलानी के घर १७ अप्रेल सन १९४१ तदनुसार चैत्र वद् छठ संवत् १९९८ को हुआ था। बालक का नाम रखा गया 'आसुमल'। बालक के पिता श्री थाऊमलजी नगर के अग्रणी, सद्गुणप्रेमी, परोपकारी और सेवाभावी वृत्तिवाले प्रसिद्ध व्यक्तित्व के धनी थे। मातापिता दोनों का जीवन धार्मिक संस्कारों से ओतप्रोत था।

कहते हैं जब भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, तब कुछ ऐसी घटनाएं घटी थी जिनको देखकर ज्योतिषियों ने बता दिया था कि यह बालक भविष्य में कोई महापुरुष के रूप

में चमकेगा। पूज्यश्री के जन्म के साथ भी ऐसी ही कई घटनाएं घटने लगी। पूज्यश्री के जन्म के समय ही अचानक एक सौदागर अति उत्तम प्रकार का हिंडोला (झूला) बालक के लिये लेकर घर पर ही आ पहुँचा। यह ईश्वरी लीला नहीं तो और क्या है!

पूज्यश्री की पूज्या माताजी का नाम 'मंगीबा' है। वस्तुतः वे 'मेहंगी बा' ही हैं क्योंकि जिस जननी की कोख से ऐसे महापुरुष का जन्म होता है वह जननी महंगी नहीं तो और क्या होगी! शास्त्रों में भी कहा है :

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था।
वसुन्धरा पुण्यवती च येन॥

जिस कुल में महापुरुष अवतीर्ण होते हैं वह कुल पवित्र हो जाता है। जिस माता के गर्भ से उनका जन्म होता है वह भाग्यशाली जननी कृतार्थ हो जाती है और उनसे वसुन्धरा भी पुण्यवती हो जाती है।

सगर्भा माता का दैनिक जीवन, आहार-विहार, रहन-सहन, देव-दर्शन, संत-सेवा, ईश्वर-चिंतन आदि शुभ कर्मों का भावि बालक के उपर बहुत प्रभाव पडता है। वीर अभिमन्यु युद्ध में चक्रव्यूह-भेदन की कला माता के गर्भ में से ही सीख कर आया था। प्राचीन समय में माताएं सत्शास्त्र पढती-सुनती और अपना समय व्यर्थ न गंवाकर उनके अनुसार अपना जीवन व्यवहार बनाती थी। इसीलिये माताओं

में अपार अलौकिक संकल्प बल आ जाता था । इसी तप के बल से माता अनसूया ने त्रिलोकीपति ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को ६–६ माह के दूध पीते बच्चे बना दिये थे। ऐसी ही माता मदालसा पालने में हिलोरे खिलाते हुए और पयपान कराते हुए अपने बच्चे को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करती थी और कहती थी :

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि ।
संसारमाया परिवर्जितोऽसि ॥

आज भी यदि माताएं महापुरुषों एवं शास्त्रोपदेश के अनुसार अपना जीवन व्यवहार ढालें तो इस धरती पर स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ जैसे महापुरुषों को कोई कारण नहीं कि जन्म न दे सके ।

पूज्यश्री के पिताजी के पास बहुत बडे प्रमाण में जमीन, खेत, गाय, भैंस, बैल, घोडे, आदि थे । समझो एक छोटा–मोटा रजवाडा ही था। पूज्यश्री की माताजी का स्वभाव अत्यंत नम्र, दयालु, सरल, सेवाभावी तथा ईश्वरभक्ति से पूर्ण था । वे स्वयं ही घर आए मेहमानों, संत एवं घर की गायों की सेवा तथा घर के कई कामकाज अपने हाथों से करती थी । माता यशोदा की तरह वे स्वयं दूध–दही और बलोणा (दहीमंथन) करके छाछ और मक्खन आदि अडोस पडोस को भी बड़े प्रेमपूर्वक बांटती थी। उनकी ईश्वरभक्ति और निष्काम सेवा के पुण्य प्रताप से ही उनकी

कोख से पहले एक पुत्र के जन्म के पश्चात् एक-एक करके तीन पुत्रियों का जन्म हुआ और उसके बाद अपने पूज्य संतश्री का जन्म हुआ ।

लोगों में ऐसी मान्यता है कि तीन पुत्रियों के जन्म के बाद पुत्र का जन्म हो तो यह 'त्रेखण' कहलाता है । अर्थात् उस पुत्र के जन्म के बाद घर में दरिद्रता आती है या अन्य कोई अमंगल घटनाएं कुटुम्ब में घटती हैं। परन्तु यहाँ उसका बिलकुल विपरीत ही दृश्य देखने में आया । पूज्यश्री के जन्म के पश्चात् तो सुख–शांति में अभूतपूर्व वृद्धि होने लगी । लक्ष्मी तो जैसे प्रसन्न होकर कुटुम्ब में बरसने लगी । जैसे धन का देव कुबेर भंडारी का ही कुटुम्ब में आगमन होने लगा हो। रही सुख–शांति की बात, तो घर की सुख–शांति तो बढ़ी ही बल्कि वही बालक आज अलमस्त फकीर के रूप में न जाने कितने दुःखित–थकित–व्यथित समाज के लोगों को शांतिरूपी आत्मधन का आस्वादन करा रहा है ।

महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी

पूज्यश्री की बाल्यावस्था में ही उनके चेहरे पर जो तेज था, उनके विशाल नेत्रों में जो चमक थी उनकी क्रियाओं में जो विलक्षणता झलकती थी। उसे देखकर सहज ही यह भास होता था कि यह बालक अवश्य कोई सिद्ध योगी-पुरुष होगा जो अपना अधूरा कार्य पूरा करने हेतु ही इस अवनी पर अवतरित हुआ है ।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैः

'शुचिनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।'

हे अर्जुन ! योग साधना पूर्णरूप से सिद्ध होने से पूर्व ही यदि योग साधक का शरीर छूट जाय तो वह साधक फिर से शुद्ध आचरणवाले किसी श्रीमान् पुरुष के घर जन्म लेता है...

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

गीता. ६–४२

अर्थात वह वैराग्यवान् पुरुष ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है, परन्तु इस प्रकार का यह जन्म संसार में निःसन्देह अति दुर्लभ है ।

पूज्यश्री की बालपन की क्रियाओं और उनके द्वारा समय समय पर प्रकट होते रहनेवाले गुणों को देखते हुए यह स्पष्ट भासित होता था कि इस बालक के रूप में अवश्य कोई प्रतिभासम्पन्न योगी की आत्मा अवतरित हुई है ।

बालक आसुमल की उम्र जब लगभग ३ वर्ष की हुई तब एक दिन पिताश्री थाऊमल के कुलगुरु पू०श्री परशराम लीलाराम घर पधारे । उन्होंने बालक के मुख की तेजस्विता और अन्य दैवी लक्षणों से युक्त उसकी क्रियाएं देखी तो वे बोल पडेः

"इस बालक को तुम अपना पुत्र अथवा कोई साधारण बालक मत समझना । यह बालक भविष्य में महान् संत बनेगा

और कई लोगों को जन्मजन्मांतर के कष्टों से छुडाएगा ।"

पिता और माता का प्रेम और स्नेह वैसे ही बालक पर बहुत था, मगर यह भविष्यवाणी सुनकर तो और अधिक बढ गया । वे उसे और श्रद्धा एवं उच्च दृष्टि से निहारने लगे । बालक को क्या चाहिये, कौनसी आवश्यकता है इस बात का बहुत ध्यान रखा जाता था । बालक को सुन्दर से सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र पहनाए जाते थे । एक ऐसा कमीज उसके लिये विशेष रूप से तैयार किया गया था जिस पर चमकीले हीरे लगाए हुए थे । उसे पहनकर वह बड़े गौरव और ठाट से चलता था । उस समय आकाश के चान्द और तारे देखकर वह सोचता था कि यह हीरे-मोतीसे जड़ा श्यामवर्ण आकाशरूपी कोई कमीज है, यह किसी ने पहना है–तो हम भी कम नहीं हैं । हमने भी तो ऐसा ही कमीज पहना हुआ है ! वस्तुतः बाल्यपन में इस प्रकार के विचार भविष्य में खिलनेवाले उच्चतम व्यक्तित्व के ही द्योतक थे ।

कुदरत की करवट

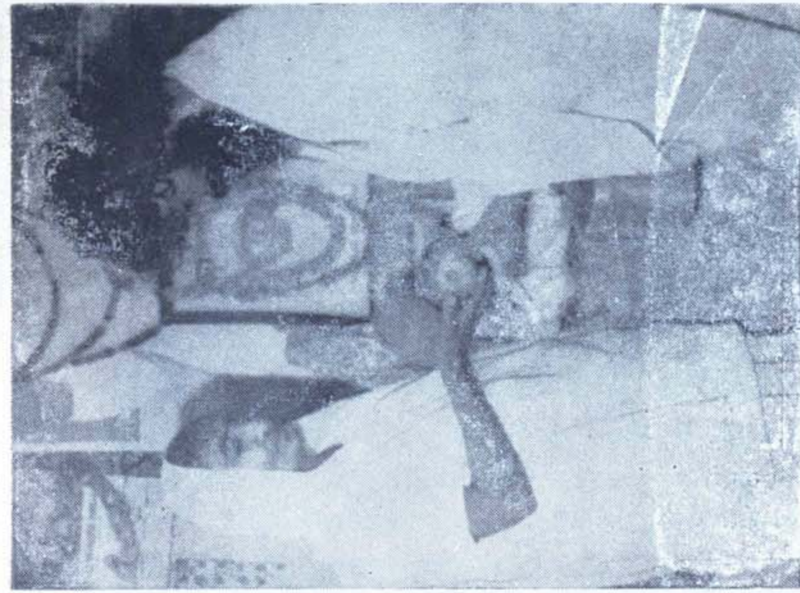
ईश्वर की लीला विचित्र है । लोहे को तपा–तपाकर जैसे कोई मजबूत औजार बनाया जाता है वैसे ही इस भावि योगी की घडाई बचपन से ही शुरू हो गई । शायद ही ऐसे कोई महापुरुष होंगे जिन्होंने अपनी बाल्यावस्था में कष्टों की खाई को पार न किया हो । इस कुटुम्ब पर भी उसकी रीढ़ तोड दें ऐसा कष्ट समूह टूट पडा । सन् १९४७

में हिन्दुस्थान का विभाजन हुआ और उसके कारण बहुत बडी संख्यामें लोगों को अपनी भू-सम्पति, पशुधन, अन्य माल मिल्कीयत सब वहीं पाकिस्तान में ही छोड़कर भारत आना पड़ा। अन्य लोगों की तरह यह कुटुम्ब भी आर्थिक दृष्टि से एक तरह से बर्बाद होकर अहमदाबाद आ पहुँचा। यहाँ-मणीनगर में इस परिवार ने डा. रमणलाल के बंगले पर डेरा डाला। आजीविका के लिये पिताश्री ने लकडी और कोयले का व्यापार शुरू किया।

विद्यार्थी जीवन

यहाँ आकर बालक की शिक्षा की व्यवस्था की गई। एक वर्ष तो बालक को सिंधी भाषा का अभ्यास कराया गया। बाद में मणीनगर की जयहिन्द हाईस्कूल में उसे भर्ती करा दिया। इस समय उसकी उम्र ७ वर्ष की थी।

उस समय सिंधी विद्यार्थियों के प्रति हाईस्कूल के अन्य विद्यार्थियों का व्यवहार बडा उपेक्षित सा रहता था। कभी कभी तो सिंधी विद्यार्थियों को दूसरे लडके बहुत तंग करते थे। ऐसा ही एक प्रसंग इस बालक के साथ भी बना। एक बार कई विद्यार्थियों ने उसे घेर लिया और तंग करने लगे। थोडी देर तो उसने विशेष प्रतिकार नहीं किया, परन्तु जब उसने देखा कि लातों के देव बातों से नहीं मानेंगे तो उसने दोनों हाथों से अपना पुस्तकों का थैला उठाया और घुमा घुमा कर सबको पीटना शुरू कर दिया। थोडी



पूज्या माताजी से भिक्षा प्राप्त करते हुए 'पूज्यश्री'

विद्यार्थी वैरागी 'आत्ममल'



भावी दिव्य व्यक्तित्वका पूर्वाभास देता हुआ पूज्यश्री का लड़कपन



अपने कुलगुरू के साथ–जिन्होंने पूज्यश्री के महान संत बनने की बचपन में ही भविष्यवाणी कर दी थी।



डीसा में शक्तिपात के सफल प्रारंभिक प्रयोग करते हुए कुण्डलिनी–योग के आचार्य पूज्यश्री

ही देर में देखा तो मैदान खाली हो गया। सब भाग चुके थे। उसके बाद किसीने उसे तंग करने की हिम्मत नहीं की। उसकी धाक पूरी हाईस्कूल में जम गई।

स्कूल में पढने के लिये भर्ती तो किया गया था बालक को, मगर संतों को भी क्या पढने का कुछ बाकी होता है? सारी पढाई का और ज्ञान का स्रोत जहाँ से फूटता है उस महान् तत्त्व में वे स्थित होते हैं, फिर भी सामान्य मनुष्य की तरह समाज में वे लीला करते हुए सब कार्य करते हैं। भगवान राम क्या ज्ञानी नहीं थे, मगर वे भी महर्षि वसिष्ठ के पास विद्याध्ययन करते थे। भगवान श्रीकृष्ण जिनके गीता ज्ञान से सम्पूर्ण विश्व के श्रेष्ठतम मस्तिष्क भी चमत्कृत हो उठते हैं और शांतिलाभ करते हैं उनको क्या पढने की आवश्यकता थी इसलिये ऋषि सांदीपनि के पास जाते थे? नहीं, बल्कि जिस समाज को दिशा देनी है, जिस समाज को मार्गदर्शन देना है वह समाज तभी मार्गदर्शन लेता है जब उसे अपने बीच अपने जैसी ही क्रियाएं करता हुआ मनुष्य नजर आता हो, तभी वह समाज उसका अनुकरण करके आगे बढ़ सकता है। इस लिये उस महापुरुष की क्रियाएं लीला नाम से जानी जाती हैं। ऐसे महापुरुष जिन्हें भगवान, संत या अवतार कहा जाता हैं वे कई ऐसी क्रियाएं करते हैं जिनसे लोक मर्यादा बनी रहे। फिर भी उन क्रियाओं में भी कभी कभी तो अलौकिकता के दर्शन हो ही जाते हैं।

विलक्षण गुणों का प्राकट्य

यही कारण है कि इस बालक में भी समय समय पर विलक्षण गुणों का प्राकट्य होने लगा । बचपन से ही बालक की स्मरणशक्ति गजब की थी । एक बार वह जब ३॥–४ वर्ष का था तो अपने बडे भाई जेठानन्द के साथ स्कूल की चौथी कक्षा में गया था । वहाँ शिक्षक ने पाठ्यपुस्तक की कोई कविता याद करने के लिये लडकों को कहा । बालक ने एक ही बार वह कविता सुनी, मगर उसे पूरी तरह कण्ठस्थ हो गई । दूसरे दिन भी वह बडे भाई के साथ स्कूल गया तो वहाँ शिक्षक ने वह कविता सब बच्चों से कण्ठस्थ हुई कि नहीं यह पूछा । मगर बडा भाई एवं अन्य विद्यार्थियों में से कोई भी वह कविता जबानी सुना नहीं सका, इसलिये सबको शिक्षक के दंड का भागी बनना पडा । उसी समय इस बालक ने पूरी कविता सबके सम्मुख जबानी सुना दी । इतनी छोटी उम्र के बालक द्वारा मधुर कंठ स्वर में गाई हुई वह कविता शिक्षक सहित सभी विद्यार्थी मंत्रमुग्ध हो सुनते रहे । यह घटना जब गाँव के अन्य लोगोंने सुनी तो उन्हें बडा आश्चर्य हुआ और बहुत बडी संख्या में लोग आसूमल को देखने के लिये उनके घर के सम्मुख आ खडे हुए । इस छोटी अवस्था में ऐसी तीव्र स्मरणशक्ति !....यह एक चमत्कार ही तो था !

जयहिन्द हाईस्कूल में भी पढने में बालक आसूमल को अधिक परिश्रम नहीं पड़ता था । स्मरणशक्ति तीव्र होने

से एक पाठ को एक बार पढने से ही उसे याद हो जाता था । दूसरी बार पढने की उसे जरूरत नहीं पडती थी । बुद्धि की तीव्रता, चित्त की एकाग्रता, नम्रता, सहनशीलता, आदि गुणों के कारण बालक का व्यक्तित्व बडा मोहक बन गया था । आसुमल सदैव प्रसन्न एवं हंसमुख रहता था । इन्हीं सब कारणों से नाम आसुमल होते हुए भी शिक्षक उसे प्रेम से हंसमुखभाई ही कहा करते थे ।

प्रधानाचार्या श्रीमती बी. पी. मेहता ने बाद में ३१ जुलाई १९७६ में अपने एक वक्तव्य में कहा था—

"स्वामीजी जब यहाँ पढते थे तो उत्साह से हर कार्य करते थे । कई कामों में वे हमारी सहायता भी करते थे और सदैव प्रसन्न रहते थे । इसलिये इनको उस समय हम हँसमुखभाई ही कहकर बुलाते थे । हँसमुखभाई की उस समय की आदतें, कार्य करने के ढंग, उत्साह, तीक्ष्ण बुद्धि आदि सभी यह संकेत दे रहे थे कि यह बालक अवश्य भविष्य में जाकर कोई महापुरुष बनेगा और हमारे स्कूल का नाम भी चमकाएगा, परन्तु हम ही उस समय इनको पहचान नहीं सके थे ।"

इस विद्या अर्जुन के समय भी पिता का बालक पर बहुत अधिक प्रेम था । वे पाठशाला जाते समय उसकी जेबमें पिश्ता, बादाम, काजू, अखरोट आदि सूखा मेवा भर देते । आसूमल स्वयं भी खाते और मित्रों को भी कभी कभी खिलाते । अपने कुशल व्यवहार और मिलनसार स्वभाव

के कारण पूरी स्कूल में अकेला एक ही सिंधी होते हुए भी बालक सबके साथ हिलमिल गया था ।

भगवद्‌भक्ति की ओर झुकाव

नन्हेपन से ही बालक की रुचि ईश्वर प्राप्ति की तरफ अधिक थी। धर्मप्रेमी मां समझती थी कि बालक को धार्मिकता के संस्कार दिये जाएं । उसे पता नहीं था कि ये संस्कार तो इतने प्रचुर मात्रा में पहले से ही विद्यमान हैं और यदि उन्हें जगाया गया तो एक ऐसी भी स्थिति आएगी कि उसे भगवद्‌भक्ति करने से रोकना पड़ेगा ।

मां बालक को ठाकुरजी की मूर्ति के सामने बिठा देती और कहती–"बेटा, देखो भगवान की पूजा और ध्यान करो। इससे भगवान प्रसन्न होकर, तुम्हें प्रसाद देंगे ।" निर्दोष बालक ऐसा ही करता । जब वह ध्यान करने के लिये आँखें बंद करता तो मौका देखकर मां मक्खन और मिश्री लाकर ठाकुरजी के सामने रख देती, फिर कहती–"बेटा! आँखें खोलो । देखो भगवान ने प्रसन्न होकर तुम्हें क्या दिया है!" बालक आँखें खोलता और मक्खन–मिश्री पाकर पुलकित हो उठता ।

धीरे धीरे बालक आसूमल भगवान के ध्यान और पूजा में बहुत अधिक समय तक बैठने लगा । जो मां पहले उसकी वृत्ति भगवान की तरफ मोडना चाहती थी। उसी के लिये अब वही बात बड़ी चिंताजनक हो गई, क्योंकि

'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। ध्यान–भजन थोड़ा बहुत तो ठीक है, मगर इतनी देर तक घंटों भगवान की विभिन्न प्रकार की सेवा पूजा में समय लगाना....! यह देखकर मां को बडी चिंता होने लगी। फिर अडोस पडोस को औरतों ने भी मां को विचित्र प्रकार से भडकाने का ही काम किया । वे कहने लगी:

"देखो बहन! भगवान की सेवा का काम लक्ष्मी का है । तुम्हारा लड़का तो इतनी देर तक सेवा करके उसका हक छीन रहा है । यदि ऐसा ही चलता रहा तो तुम्हारे लड़के से लक्ष्मी नाराज हो जाएगी, रूठ जायेगी। लक्ष्मी रूठ जाती है तो वह घर छोडकर चली जाती है ।"

बेचारी–भोली भाली मां उनकी बातों में आ जाती और बेटे को समझाती भी, मगर आसूमल पर कोई प्रभाव इन बातों का नहीं पडता था ।

बालक आसूमल हमेशा ब्राह्ममुहूर्त में उठता और स्नानादि से निवृत्त होकर ठाकुरजी की पूजा में लग जाता। भगवान की मूर्ति को स्नान कराता, नैवेद्य चढाता और भिन्न भिन्न प्रकार से पूजा करता । पूजा के कई ढंग तो उसने देखदेख कर सीखे थे और कई अपने ढंग से ही निर्मित कर लिये थे ।

आसूमल स्कूल की रिसेस (अवकाश) का व अन्य फुरसत का समय अन्य बालकों की तरह इधर उधर की गपशप में नहीं बिताता था । वह कई बार सब अन्य

विद्यार्थियों को छोडकर अकेला किसी पेड के नीचे जाकर बैठ जाता और ईश्वरचिंतन अथवा ध्यान करता । एकांत-प्रियता उसे बहुत पसन्द थी। कभी कभी किसी धार्मिक स्थान या संत के दर्शन के लिये चला जाता तो कभी कहीं सत्संग हो रहा होता उसमें जाकर बैठ जाता । कई बार तो भालकिया बस-स्टेन्ड के पास स्थित रामजीमंदिर में रामधुन करते करते भावावेश में आ जाता और फिर ध्यानस्थ हो जाता। फिर तो समय का भान ही नहीं रहता कि कब वहाँ आए थे और कब घर लौटेंगे । इसीलिये कई बार देर से घर लौटने पर घर का दरवाजा बंद मिलता और जब खुलता तो बड़े भाई की फटकार के साथ ही खुलता । करते थे भगवान की भक्ति और पुरुस्कार में मिलती थी बड़े भाई की फटकारें ।

बालक पढ़ने में मेधावी था । स्कूल की परीक्षा में हर बार प्रथम श्रेणी में पास होता था, मगर यह सामान्य विद्या उसको कभी आकर्षित नहीं कर सकी । उसका झुकाव सच्ची विद्या-ब्रह्मविद्या की ओर ही अधिकाधिक बढता रहा ।

' सा विद्या या विमुक्तये '

दुःखपूर्ण जन्म मृत्यु के चक्र से जो विद्या सदा के लिये मुक्त करे-वही सच्ची विद्या है। दूसरी विद्याएं तो व्यवहार सामान्य रूप से चलता रहे इतनी मात्र सीखना पर्याप्त है। क्योंकि इनका फल नाशवान् है। बालक आसूमल के दिमाग में सदैव इसी प्रकार के विचार आया करते थे कि मैं यह

सब सीखकर क्या करूँगा ? मुझे तो ईश्वरी विद्या ब्रह्मविद्या सीखनी चाहिये । ये सब लौकिक विद्याएँ सीखकर क्या करूँगा....क्या इससे मुझे ईश्वर मिलेगा ?....मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊँगा, ईश्वर क्या है, कैसा है, कहाँ रहता है, उसकी भक्ति कैसे करूँ कि मुझे वह जल्दी मिल जाये-बस इसी प्रकार के विचार उसके मन-मस्तिष्क में दौडा करते थे ।

प्रकृति की क्रूर कसौटियां

इस परिवर्तनशील संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन, सुख के बाद दुःख और दुख के बाद सुख, सर्दी के बाद गर्मी और गर्मी के बाद सर्दी यह प्रकृति का अटल नियम अनादि काल से सब पर लागू है। सामान्य मनुष्य पर तो शायद इतने कष्ट नहीं पडते, परन्तु महापुरुषों के जीवन को तो कसने के लिये प्रकृति जैसे हाथ धोकर पीछे पड़ी रहती है। फिर भी जो इन कष्टों में से सफलतापूर्वक पसार हो जाते हैं उनको पुरुस्कार भी बहुत ऊँचा हांसिल होता है । वे महापुरुष प्रकृति पर हुकुम चलाने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं । प्रतिकूलताएं प्रगति को जन्म देती हैं । जो सोना जितना अधिक ताप सहन करता है वह उतना ही अधिक चमकता है।

आध्यात्मिक जगत में-साधना के जगत में तो प्रति-कूलताएं और कष्ट साधक के लिये वरदान सिद्ध होते हैं । साधक अवस्था में जिस महापुरुष ने जितने अधिक कष्ट

एवं प्रतिकूलताएं सहन की है वह महापुरुष अपनी मंजिल तय करने के पश्चात् अर्थात् सिद्ध बनने के बाद उतने ही अधिक प्रमाण में साधक एवं अन्य लोगों की परमार्थ में अधिक दृढता एवं सफलतापूर्वक आगे बढाने में समर्थ हुआ है। यह बात कई महापुरुषों के जीवन से सिद्ध है।

कहा गया है कि जिसे भगवान अपने से दूर रखना चाहता है उसे संसार के भौतिक सुख देता है और जिसे अपने नजदीक बुलाना चाहता है उसे प्रतिकूल परिस्थितियाँ एवं कष्ट भेजता है।

द्वितीय वज्राघात

उपर्युक्त कथन के अनुसार ही बालक आसूमल के जीवन में दूसरा महान् वज्राघात हुआ। ग्यारह वर्ष की कोमल अवस्था में ही उनके पूज्य पिता उन्हें इस संसार की विकट परिस्थितियों से झूझने के लिये परिवार सहित छोड़कर चले गए। पिता का आसूमल पर बहुत प्रेम था। आसूमल भी पिता की बहुत तन मन से सेवा किया करते थे।

रात को आसूमल अपने पिता के पैर दबाया करते थे। पिता जानते थे कि इस बालक से सेवा नहीं ली जायें, परन्तु आसूमल उनकी बात न मानकर बहुत आनन्द से उनकी सेवा किया करते थे।

स्वामीजी के ही शब्दों में:

"मैं रात को बहुत देर तक पिताजी के पैर दबाया करता था। इस सेवा में कभी तो दो दो तीन तीन बज जाते

थे। और यह सेवा मैं इतनी लगन से करता था कि प्यास लगती तो पानी भी पीने नहीं उठता था। वे नींदमें से अचानक जागते और मुझे पगचंपी करते हुए देखते थे तो पूछते थे.

'अरे बेटा! अभी तक तू यहीं बैठा है?....जा सोजा।'

फिर कुछ सोचते हुए कहते–

'तुमने खाना खाया कि नहीं?'

मेरा जवाब होता–

'खा लूंगा पिताजी, आप सो जाएं।'

तो वे चौंककर कहते–

'अरे, अभी तक तुमने खाना भी नहीं खाया! उठ बेटा, जा खाना खा ले और सो जा। तुम मेरे लिये बहुत कष्ट उठाते हो। सभी घर में सो गए हैं और तुम अभी तक यहाँ बैठे हो! जाओ बेटा, अपनी नींद मत खराब करो!........' और इसके पश्चात् उनके श्री मुख से मेरे लिये हृदयपूर्वक ये आशीर्वादात्मक वचन निकलते थे:

'बेटा! तुम्हारा दुनियाँ में नाम होगा।'

फिर स्वामीजी हँसकर कहा करते हैं–तो सेवामें यह शक्ति है। उसी सेवा के परिणाम-स्वरूप निकले उनके आशीर्वादरूपी वचनों का यह फल है कि मैं आज इतना प्रेम बटोर सका हूँ कि बहुत बांटते हुए भी नहीं खूटता है।"

मगर ऐसे प्रेमपूर्ण पिताजी की छत्र-छाया से आसूमल को इस सुकोमल अवस्था में ही वंचित हो जाना पडा।

अब सुख के दिवसों का अवसान शुरू हो गया।

पिताजी न रहने से बड़े भाई एकदम स्वच्छन्दी हो गए। वे छोटी-छोटी बातों में आसूमल पर हाथ उठाने लगे। बालक आसूमल उनके पीटने से रो पड़ता था। बड़ा भाई कभी उसे चुप कराने के लिये कहता-चलो चलो दर्जी के पास, तुम्हारे लिये नेकर (चड्डी) सिलवाने की है, न उसकी नाप देनी है। ऐसा कई बार वे कई दर्जियों को नाप दे आते थे, मगर वे नाप नाप ही रह जाते थे, चड्डी नहीं बनती थी। बड़े भाई पर किसी का शासन था नहीं। मां कुछ कहती, मगर उसको कौन सुनता? बालक आसूमल बड़े भाई के इस आततायी व्यवहार से तंग आजाते और किसी मंदिर में जाकर भगवान की मूर्ति के सामने बैठकर बहुत रोते और अपने सरल और व्याकुल हृदय से प्रार्थना किया करते कि 'हे भगवान! हमारे पिता तो गुजर गए हैं। अब हमारी स्थिति बड़ा विचित्र हो गई है। मां की कोई सुनता नहीं। तुम हमको दर्शन दो प्रभु!' इस प्रकाश निर्दोष हृदय की प्रार्थना से उनको कई अलौकिक अनुभव होते थे।

बड़े भाई की अकुशलता और उनके गप्पीबाज दोस्तों की संगति के कारण पिताजी की बड़े परिश्रम से संचित की गई सम्पत्ति थोड़े ही समय में अपव्यय हो गई। जैसे लक्ष्मी आसूमल को कह रही थी कि तुम्हें तो भगवान चाहिये न, मैं तो चाहिये नहीं-मुझे तो तुम प्रेम करते नहीं। इसलिये मैं यहां क्यों रहूँ? पहले भी भारत विभाजन के समय

तुम्हें मैं छोड़कर चली गई थी। वह मेरा पहला सबक था। फिर भी तुम सम्हले नहीं। अब यह दूसरा सबक है। देखती हूँ, कब तक तुम भगवान भगवान करते रहते हो! में जाती हूँ, तुम अपने भगवान को ही बुलाओ!

ऐसी धमकियाँ माया की साधकों को सदैव हो मिलती आई हैं। नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) को भी यह धमकी मिली थी। जब वे आजीविका के लिये दर दर ठोकरें खा रहे थे तब श्री रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें कहा था कि 'जाओ, माँ काली तुम्हारी राह देख रही है। जो इच्छा हो मांग लो।' नरेन्द्र गए मां के सामने, मगर उन्होंने माया नहीं मांगी। उन्होंने मांगा, "मां, मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, वैराग्य दो।"

ईश्वरी मार्ग के सच्चे पथिक क्या कभी माया के भुलावे में आते हैं! ईश्वर छोड़कर कभी वे कुछ भी नहीं मांगते। ये सब तो माया के विघ्न हैं जो डराने के लिये तो आते हैं, मगर उनसे पार हुआ जाता है, डरा नहीं जाता। उनसे डर जावे, वह कैसा भगवान का भक्त!

नरसिंह के मेहता गुजराती भजन की पंक्तियाँ हैं—

भोंए सुआडूं, भूखे मारुं, ऊपरथी मारुं मार।
एटलूं करता जो हरि भजे, तो करी नाखूं निहाल॥

अर्थात् गद्दे तकियों पर नहीं, जमीन पर सुलाऊंगा, भूखा मारुंगा, ऊपर से मार मारुंगा। इतने प्रकार के कष्ट दूंगा, फिर भी यदि हरि, भजन किया तब तो निहाल कर दूंगा।

ये पंक्तियाँ साधक के लिये चुनौती है ।

तो प्रकृति ने भी बालक आसूमल को पूरी अग्नि परीक्षा शुरू कर दी । कुटुम्ब की तरफ बड़े भाई का दुर्लक्ष्य देखकर बालक आसूमल को अपनी स्कूल की पढ़ाई अधूरी ही छोड़ देनी पड़ी । कुटुम्ब के पालन-पोषण की भारी जिम्मेदारी उसके नन्हे कंधों पर आ पड़ी । सम्पूर्ण कुटुम्ब को भारी आर्थिक अभाव में से गुजरने के दिन आ गए । जहाँ पानी मांगते तो दूध हाजिर होता था वहाँ पानी के लिये भी लाले पड़ गए । प्रभु की लीला विचित्र है ! वह पल में राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है । बस्ती को वीरान और उजाड़ बना देता है और जहाँ उजाड़ हो वहाँ बस्ती और हरियाली खड़ी कर देता है । जिस बालक को पीने के लिये पानी का गिलास भी हाथ से नहीं भरना पडता था उसी बालक आसूमल को इस छोटी उम्र में कुटुम्ब को सहारा देने के लिये नौकरी की खोज में भटकना पड़ा । आखिर सिद्धपुर में एक नजदीक के सम्बंधी के यहाँ वे नौकरी के लिये पहुँच गए ।

सिद्धपुर में साधना

परन्तु इस व्यावहारिक नौकरी के पीछे वे परमात्मा की नौकरी नहीं भूले । उनकी ईश्वर प्राप्ति के लिये व्याकुलता उत्तरोत्तर बढती ही रही ।

यहाँ आसूमल प्रातः चार बजे अपना बिस्तर छोड़ देते और घर से निकलकर सरस्वती नदी के पावन

तट पर पहुंच जाते । वहाँ नदी के पावन जल में स्नान कर के नजदीक बने 'माधु पावडी' नामक स्मशान स्थल के पास आए हुए 'पारस पीपला' के पास स्थित भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा के सम्मुख जा खड़े होते । उस प्रतिमा को वे घंटों निहारते और मन ही मन उस से बातें करते । फिर भावावेश में आकर उस से लिपट जाते और सावन भादों की तरह उनकी आँखें बरस पडती । लोगों के लिये तो वह प्रतिमा केवल प्रतिमा थी, मगर आसूमल के लिये तो वह प्रतिमा जैसे सजीव हो उठती थी । वे अपने हृदय में उमडते हुए भावों को अश्रुबिंदुओं के रूप में अपने भगवान को चढ़ाते रहते थे । लोगों के लिये श्रीकृष्ण केवल भगवान ही थे, मगर आसूमल के सम्मुख कभी तो वे भगवान और कभी सखा कृष्ण बन जाते । उनको छोड़कर आसूमल घर की ओर लौटने के लिये कुछ कदम आगे रखते, मगर फिर से मुड़कर देखते तो लगता कि सखा कृष्ण नाराज से हो गए हैं । उनको अपने अन्तर में ऐसा सुनाई जान पड़ता कि जैसे सखा कृष्ण कह रहा है-बस ! अब जाते हो ? थोड़ी देर रहे मेरे पास और इतनी जल्दी मुझे अकेला छोड़कर जाते हो...?

स्वामीजी कभी उन दिनों की बात का स्मरण होता हैं तो साधकों को कहते हैं-

"फिर कृष्ण का वह चेहरा, जब मुझे अपनी तरफ बड़े प्रेम व व्याकुलता से बुलाता हुआ नजर आता तो मैं अपने

आप को रोक नहीं पाता था और पुनः लौटकर उस मूर्ति में बसे मेरे कन्हैया से लिपट पड़ता। फिर मेरे हृदय में कैसे कैसे भाव उठते थे उनका मैं आपको क्या वर्णन करूँ! उधर से कोई निकलता तो मुझे पागल समझ कर वहाँ से गुजर जाता।"

वहाँ से घर लौटकर आसूमल करीब साढ़े सात बजे वहाँ के प्रख्यात 'श्री गोविन्द माधव के मंदिर' में पहुँच जाते। मंदिर में ग्यारह बजे तक ईश्वर-चिंतन और ध्यान में मग्न हो जाते। मंदिर के पुजारी एवं अन्य ब्राह्मण उनकी ऐसी ईश्वर-भक्ति देखकर बड़ा आश्चर्य करते और उनको बडे मान, प्रेम एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते। कभी कभी प्रेम से खूब प्रसाद एवं दूध का गिलास भर कर देते थे। और वह देने में उनको बहुत आनन्द अनुभव होता था।

ऐसी प्रभु की नौकरी के पश्चात् ही वे व्यावहारिक नौकरी के लिये पहुँच पाते थे।

साधना की सुगंध-

'तप करे पाताल और प्रकट होय आकाश'

कहावत के अनुसार आसूमल के अन्दर कई अलौकिक शक्तियाँ उस छोटी अवस्था में ही प्रकट होने लग गई थी। वे बहुत छुपाते थे अपने आपको, मगर फिर भी कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण घटनाएं घट ही जाती थी जो उनकी तीव्र गति से सफलता पूर्वक बढती हुई साधना की द्योतक थी।

एक बार सिद्धपुर में एक कुटुम्ब में खून का केस हुआ और उसमें उसी कुटुम्ब के दो सदस्यों को जेल के

सीखचों में बन्द होना पड़ा। कुटुम्ब पर तो जैसे कष्टों का पहाड़ टूट पड़ा। जेल गए लडकों की मां को ऐसी अवस्था में आसूमल की याद आई, क्योंकि उन पर उसकी बड़ी श्रद्धा व मान की भावना थी और वह जानती थी कि वे भगवान के गहरे भक्त हैं। इसलिये उसने आसूमल के पास आकर श्रद्धा पूर्वक विनती की कि 'हे भगवान! आप ठीक ठीक बतलाओ कि मेरे पुत्र कब जेल से छूटेंगे?' आसूमल को उस समय 'भगवान' नाम से ही सभी पुकारते थे। आसूमल कुछ क्षणों के लिये ध्यानस्थ हो गए। फिर अपनी आंतरिक प्रेरणा के अनुसार आँखें खोलकर बोलेः

'चिंता मत करो, कुछ ही दिनोंमें निर्दोष छूटकर घर आ जाएंगे'—और हुआ भी ऐसा ही। थोड़े ही दिनों में दोनों भाई जेल से निर्दोष छूटकर घर लौट आए। इस प्रकार वाक्सिद्धि की कई अलौकिक घटानाएं उस समय घटती रही, मगर उन सबका वर्णन यहाँ संभव नहीं है।

अहमदाबाद में पुनरागमन

इस प्रकार तीन चार वर्ष सिद्धपुर में विताने के बाद आसूमल पुनः अहमदाबाद लौट आए। दिन प्रतिदिन कुटुम्ब की आर्थिक स्थिति गिरती ही जा रही थी। बड़े भाई का मौज-शौक पूर्ण जीवन चालू रहने से तो इसमें और अधिक गति आ गई और कुटुम्ब पर कर्ज बढ़ने लगा। विवशतः आसूमल को परिवार के निर्वाह के लिये छोटे मोटे कई व्यापार करने पड़े और उन्हीं से उपार्जित छोटो मोटी धन-

राशी से परिवार का खर्च और बडे भाई द्वारा किया हुआ मौज–शौक का खर्च वे चुकाते रहे।

बचपन में जब आसूमल अधिक देर तक ध्यान और पूजा करते थे तो उनकी मां को पडोसिन बहनें कहती थी कि तुम्हारा बेटा भगवान की अधिक सेवा करता है इसलिये लक्ष्मी नाराज हो जाएगी, क्योंकि वह लक्ष्मी की सेवा का अधिकार छीन रहा है। यह बात याद करके भी कभी–कभी मां चिंतित हो जाती और सोचती कि घर से लक्ष्मी के नाराज होने में वह बात भी शायद एक कारण है। वह बेचारी क्या जाने कि ये तो प्रभु की विभिन्न प्रकार की कसौटियाँ हैं। जिनमें से किसी भी महापुरुष को पार होना ही पड़ता है।

भाई का हृदय परिवर्तन

बाल योगी आसूमल की ईश्वर भक्ति का अब दूसरा चमत्कार देखने में आया। परिवार की इन विकट परिस्थितियों में भी जबकि बड़ा भाई परिवार की जिम्मेदारी के प्रति पूर्णतः लापरवाह था, अपने आसूमल परिवार के लिये अधिक परिश्रम भी करते थे और अपने ईश्वरानुराग को भी बराबर दिन-ब–दिन एकनिष्ठ हो बढ़ाते जाते थे। आसूमल का एकनिष्ठ ईश्वर के प्रति अनुराग और उनके परिश्रम की कमाई का अन्न पेट में पहुँचने से आखिर बड़े भाई के स्वभाव में परिवर्तन आया। उनकी कुसंगति छूट गई और अपने खानदान की प्रतिष्ठा को शोभा दे ऐसा उनका जीवन

व्यवहार बन गया। अब वे अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को समझने लग गए और अपना समय व्यावहारिक जवाबदारियाँ निभाने में लगाने लगे।

तुच्छ और अधम विचारों वाले व्यक्तियों के संग से सज्जन और समझदार व्यक्ति का भी पतन होने लग जाता है और अपने से अधिक समझदार और उच्च विचार वाले महापुरुषों का संग करने से पतित व्यक्ति भी महान् बन जाता है। आसूमल के एकनिष्ठ ईश्वरभक्ति वाले कठिन परिश्रमयुक्त सहनशील और सादे जीवन का संग मिलने से बड़े भाई में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए।

प्रभुभक्ति का चमत्कार

बड़े भाई के सम्हल जाने से अब पुनः आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगा। अब दोनों भाईयों ने कुछ सगे-सम्बंधियों से थोड़ी आर्थिक सहायता लेकर कालुपुर दरवाजे के पास गुड-खांड का व्यापार शुरू किया।

इन दिनों असूमल की ईश्वर भक्ति के कई चमत्कार लोगों को देखने में आने लगे। जब वे दुकान पर बैठते तो ग्राहकों की भीड़ लग जाती। कितना माल खरीदना, उसे कितने दिन स्टोक करके रखना और कब बेच देना, इस विषय में बड़े भाई आसूमल की सलाह से ही काम किया करते थे। उनकी सलाह में न मालूम कैसा जादू था कि कई बार महीनों या वर्षभर का लाभ कुछ ही दिनों में हो जाता। पैसा पानी की तरह आने लगा। जब कोई सलाह आसू-

मल से बड़ा भाई करता तो आसूमल आंख बन्द करके कुछ सोचकर जो कुछ कह देते, वह करने से सदैव लाभ ही होता। अड़ोस-पड़ोस के लोग भी व्यापार के बारे में उनसे सलाह लेने लगे।

बड़े भाई द्वारा ज्यादतियाँ

मगर आसूमल को यह सब अच्छा नहीं लगता था। उनकी वृत्ति उपराम होने लगी। वे मौका पाकर दुकान से खिसक जाते और किसी एकान्त स्थान में जाकर ध्यान एवं ईश्वर-चिंतन में लग जाते। कभी तो एक या दो घंटे ही दुकान पर बैठते और बाकी का समय हीरापुरी विद्यालय के पीछे आई हुई समाधियों की शांत जगह में जाकर किसी पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान करते। तब बड़ा भाई परेशान हो जाते, क्योंकि उनके खिसक जाने से ग्राहकी में एकदम मंदी हो जाती। एक तरफ जहाँ बड़े भाई का पैसे कमाने में मोह बढ रहा था, वहाँ आसूमल को पैसे कमाने से वैराग्य हो रहा था। बड़े भाई उन्हें समझाते और फुसलाते ताकि किसी भी तरह आसूमल दुकान पर उपस्थित रहे, भले वे वहाँ कुछ भी न करें, खाली बैठे ही रहें। न मानने पर मां द्वारा भी आग्रह करवाया, डराया, धमकाया–कई प्रकार का अन्य दबाव भी डाला, परन्तु आसूमल को लक्ष्मी आकर्षित नहीं कर सकी–और करती भी कैसे ? जो लक्ष्मीपति की सीधी सेवा में लगा है, उसे लक्ष्मी की परवाह ही क्यों होगी ? यदि लक्ष्मीपति प्रसन्न हो गए तो लक्ष्मी तो उनके

पीछे-पीछे छाया की तरह आने को बाध्य है ही।

प्रभु प्रेम की प्रकृति

संसारी पदार्थ से प्रेम करना शुरू करो तो वह मिलता जाता है। मगर ईश्वर को प्रेम करो तो !....यह पता नहीं लगता कि वह कब मिलेगा ! बस, प्रेम किये ही जाओ किये ही जाओ ! उलटी ज्यों ज्यों कृपा होती है, वह मिलना तो दूर उलटा विरह देता है। भक्तों को विरह की अग्नि में जलाता है। भक्तों को विघ्नों और कष्टों की खाइयों में ढकेलता है। अपने प्रिय सम्बधियों के ही कोप एवं विरोध का भागी बनाता है। संसार के सब सहारों को धीरे धीरे छीनने लगता है। जिन्होंने ईश्वर को प्रेम किया है उनको ईश्वर ने कई बार दाने दाने को मोहताज किया है, दर दर की ठोकरें खिलवाई हैं अपने भक्तों को।

हे प्रभु ! क्या तेरा अपने भक्त से प्रेम करने का यही ढंग है ? क्या तुझे और कोई ढंग भक्त से प्रेम करने का नहीं आता ? यह भक्त की शिकायत हो सकती है। मगर सच्चे भक्तों को तो यह शिकायत भी नहीं होती। वे तो यह भली प्रकार जानते हैं कि प्रभु मेरे साथ खेल कर रहे हैं। यह तो उनका नाटक है। यह तो वे मेरी सहनशीलता की, मेरी पात्रता की कसौटी कर रहे हैं। ये विघ्न और बाधाएं–कष्ट आदि दूसरा कोई नहीं मेरे प्रभु ही भेज रहे हैं न ! यह तो हमारा अहोभाग्य है, ऐसा समझ कर भगवान के सच्चे भक्त विघ्नों की परवाह न

करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। इसीलिये स्वार्थी भक्त अथवा यों कहिये कि लक्ष्मी के भक्त भगवान के नश्वर मायावी पदार्थों को पाते हैं जो कभी न कभी बिछुडेंगे ही और सच्चे भक्त स्वयं भगवान को ही पाते हैं जो कि मिलने के बाद कभी बिछुडते ही नहीं।

आसूमल तो भगवान के ही भक्त थे, लक्ष्मी के नहीं। वे अपने सम्बंधियों की फटकारें सुनी अनसुनी करके अपने साधना मार्ग पर आगे बढ़ते रहे।

आर्थिक स्थिति में सुधार

आसूमल दुकान पर भले ही अधिक बैठते नहीं थे, मगर दुकान की व्यवस्था करने में माहिर थे। थोडे में ही दुकान की व्यवस्था ठीक करके और बड़े भाई के हवाले करके स्वयं कपड़े के व्यापार की जानकारी हासिल करने के लिये रेवड़ी बजार में स्थित एक जत्थाबंध दुकान पर कुछ समय रहे। फिर एक भागीदार को साथ लेकर पांच-कुआ सिंधी मार्केट में रेशमी कपड़े का व्यापार शुरु किया। आसूमल की तीव्र-कुशाग्र बुद्धि एवं ईश्वरीय तेज के प्रभाव से कुछ ही समय में परिवार की आर्थिक स्थिति फिर से ठीक हो गई। भागीदारी में यह व्यापार करीब ६ महीने तक चला। फिर भी इस व्यापार से आर्थिक कष्टों की काली रात्री का अंत आ गया।

वैराग्य का उछाला

परन्तु जिसका मन अपने मालिक परम पिता परमे-

श्वर से मिलने को आतुर हो वह इन तुच्छ, नाशवान संसारी भोग-सामग्री को कब तक संग्रह करने में लगा रह सकता है! आसूमल व्यापार तो करते थे, मगर पूरा मन उस में नहीं लगा पा रहे थे। उनके हृदय को कुरेद कुरेद कर अन्दर से कोई जैसे बार बार कहता रहता था:

संसार की यदि वस्तुओं में चित्त तेरा जायगा।
तो चित्त चंचल होय, पर्दा बुद्धि में पड़ जायगा॥
रखते हुए भी आँख तू, बे आँख का बन जायगा।
सर्वत्र व्यापक ईश भी, नहीं देखने तू पायगा॥
संसार की सब वस्तुएं तेरे लिये जंजीर हैं।
तेरे हृदय को छेदने पैंने भयंकर तीर हैं॥
दर्शन करा निज आँख को सुख शांति के भंडार का।
मन सदा ही कर मनन उस सार के भी सार का॥

उनके मन-मास्तिष्क में सदैव ऐसे ही विचार उठते रहते थे कि ऐसा आखिर कब तक चलाता रहूँगा! वे मन ही मन भगवान से प्रार्थना करते थे कि हे भगवान! क्या मेरा जीवन इन संसारी तुच्छ पथार्थों के पीछे ही नष्ट हो जायेगा? इस संसार के मोह में ही तो लगे रहकर मेरे दादा परदादा एवं अन्य सगे-सम्बंधी मौत के मुँह में चले गए हैं अब तक। सारा संसार इसी प्रकार भागा चला जा रहा है इन्हीं पदार्थों के पीछे। मगर लगता किसी के हाथ में कुछ भी नहीं है। मरते हैं तो सभी निराश मरते हैं। संसार के सारे कर्तव्य आज तक कोई कभी

पूरे नही कर सका हैं। क्या मेरा भी जीवन ऐसे ही बिना तेरी प्राप्ति के, बिना तेरे दर्शन के यों ही व्यतीत हो जाएगा ? मेरा निर्दिष्ट कार्य तो ईश्वर प्राप्ति का है, फिर मैं देरी क्यों कर रहा हूँ ?...इस प्रकार के विचारों ने आसूमल के हृदय और मातिष्क का कब्जा ले रखा था।

एकबार इन्हीं दिनों घर पर कोई मेहमान आए। बड़े भाई ने उनको सिनेमा दिखाने के लिये जबरदस्ती आसूमल को उनके साथ भेज दिया। जैसे तैसे मेहमानों को लेकर आसूमल सिनेमा गृह में गए। मेहमान तो सिनेमा देखने में मग्न हो गए, मगर आसूमल के भीतर एक दूसरा ही सिनेमा चालू हो गया। उस तामसी और राजसी वातावरण में वे अधिक देर नहीं बैठ सके और मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगे:

हे भगवान! मेरे ऐसे कौन से पापकर्मों का फल तू दे रहा है कि मुझे आज यहाँ जबरदस्ती भेज दिया गया है। इस समय मैं कहीं और जगह होता तो तेरा ध्यान-भजन और चिंतन करता। ओह! अब कब यहाँ से मैं छूटूँगा प्रभु ....!

इस प्रकार प्रभु से करूण प्रार्थना करते हुए प्रभु प्रेम में आसूमल की आँखों से झर झर आँसू झरने लगे।

आह! हे भगवान! तू जिसे भी मिला है उसे कितनी बार तूने इस प्रकार सताया होगा! पंजाबी भाषा में कहा है:

पेली पौरी न किसी नूँ यार मिलया।
जिन्हें मिलया खाना खराब करके॥

इस प्रकार आसूमल का वैराग्य बढ़ता ही जा रहा था। वे पूरे मन से दुकान-व्यापार का काम नहीं कर पा रहे थे। कई बार मन उपराम होने से सब काम छोड़कर कहीं एकांत स्थान में पहुँच जाते और ध्यान में बैठ जाते। कई बार तो इतनी अधिक व्याकुलता हो जाती कि आगे न जा पाते और बीच में आ जाने वाले किसी भी पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान में खो जाते। फिर घंटों बीत जाते। समय का भान ही नहीं रहता था। कई बार शाम को खाना पीना भूलकर घर पर कमरा बन्द करके ईश्वरी मस्ती में निमग्न हो जाते। भूख प्यास भूल जाते और रात्रि योंही बीत जाती।

इस प्रकार यह वैराग्य रूपी वृक्ष साधना और अभ्यास रूपी जल सिंचन से दिन प्रतिदिन बड़ा ही होता जा रहा था।

जो मां पहले बालक को ईश्वर के प्रति भक्ति जगाने के लिये मक्खन और मिश्री बड़ी अटकल से छिपाकर भगवान की मूर्ति के आगे रखती थो और कहती थी कि देखो बेटा, यह भगवान ने तुम्हारे लिये प्रसाद दिया है, वही मां अब किशोर वय आसूमल के तीव्र वैराग्य को देखकर इस विचार से आशंकित हो गई कि कहीं यह घर छोड़कर न चला जाए। इसका राग प्रभु की बजाय संसार से कैसे जुड़े इस की अटकलें ढूंढने लगी। रिश्तेदारों में

जो जो प्रभावशाली लोग थे, प्रतिष्ठत थे, समाज में आगेवान थे उनको बेटे को समझाने के लिये कहा।

यह खूबी है मनुष्य की कि जहाँ कहीं किसी को उपदेश करना हो, कहीं आगेवानी करनी हो वहाँ वह शीघ्र तैयार हो जाता है। इस में जोर भी क्या पड़ता है! इस में अपने अहं को पुष्टि मिलती है। और ऐसे सहानुभूति बताने मात्र से अपने को बड़प्पन मिलता है तो हम क्यों चूकें-ऐसा विचार कर कई ऐरे गैरे लोग भी बड़े भाई और मां के पास पहुँच जाते और आसूमल के लिये कुछ शब्द बोल देते। भोली-भाली मां उनसे कहती-'भैया! मैं क्या करूँ, तुम्ही जरा उसको समझाओ न?'

बस! इस प्रकार के एवं दूसरे भी अपने को कुछ आगेवान सुधारक मानने वाले लोग आसूमल के पास पहुँच जाते। 'सत हरिभजन जगत सब सपना' यह कौन नहीं जानता? संसार का जो कुछ है वह एवं अपना शरीर तक भी एक दिन हमसे छूट जायगा यह कौन ऐसा व्यक्ति है जो नहीं जानता? इसीलिये तो श्मशान में जाकर वैराग्य की बातें सभी लोग करते हैं और कहते हैं: भाई, भगवान का भजन करो, बाकी तो सब चला जायगा, संसार में क्या रखा है? चार दिन की जिन्दगी है, क्या किसी से राग-द्वेष करना! संसार असार है। मगर यह वैराग्य केवल श्मशान में रहने तक ही-घर आते ही संसार ही सार हो जाता है। फिर वही व्यापार-धंधा, दुकान-मकान,

मेरा-तेरा, तू तू मैं मैं-सब शुरू हो जाते हैं। फिर श्मशान की वे वैराग्य की बातें श्मशान में अगली किसी लाश को जलाते समय करने के लिये दिल के किसी कोने में सुरक्षित रख लेते हैं।

हमारी उम्र बढ़ती जाती है क्षण-क्षण, दिन प्रति-दिन, मगर कभी इन वैराग्य की बातों को अपने हृदय में नहीं उतरने देते। और भूल से किसी के हृदय में उतरनी यदि शुरू भी हो गई तो समाज के सारे तथाकथित समझदार लोग उसके विरूद्ध झंडा लेकर खड़े हो जाते हैं।

मगर आसूमल समाज के इस ढांचे में फिट नही हो सके। वे पूरे प्राणों से जीवन के इस सार को अनुभव करते थे कि 'संसार असार है'। और इस प्रकार का अनुभव करना यह क्या कोई छोटी मोटी बात है? जिस वैराग्य के लिये बड़े बड़े योगी भी तरसते हैं, जिस भक्ति के लिये बड़े बड़े पंडित, भक्त एवं कथाकार भीं तरसते हैं, जिस समझ में बड़े बड़े सुधारक और समाज-नेताओं की भी गम नहीं है-पहुँच नहीं है; वह वैराग्य, वह भक्ति और वह समझ आसूमल को बचपन से ही सहज प्राप्त थी। फिर भी लोगों ने अपनी बे समझ बातों को समझ का पहनावा पहनाकर बाल वैरागी आसूमल के दिल में उतारने की कोशिश करने में कोई कोर कसर बाकी नहीं रखी।

बाल वैरागी आसूमल समाज के इन सब महारथियों में अभिमन्यु की नाई खड़े रहकर इनके तर्कों का अकेले सामना

करते रहे। यह तो, 'जल में रहकर मगर से वैर' वाली बात थी। एक छोटा बालक और हम समाज के समझदार लोग! कैसा नादान है यह कि हमारी बात नहीं मानता!

वाह रे प्रभु तेरी लीला! एक तरफ तो कहता है, भक्ति कर और दूसरी तरफ लोगों को कहता है, इसको रोको। यह कैसी कसौटी? फिर भी वैरागी आसूमल सबके सम्मुख हिमालयकी नाई दृढता से खड़ रहे।

इन सब घाटियों को पार करने के बाद भी वैरारी आशाराम के लिए विधि को कुछ और ही मंजूर था।

हरि को चिन्तयो

मेरो चिन्त्यो होत नहीं हरि को चिन्त्यो होय।
हरि को चिन्त्यो हरि करे मैं रहूँ निश्चिंत॥

मगर वैरागी आशा राम का प्रारब्ध कुछ और ही खेल करना चाहता था। समझाने वालों ने अब एक और चाल चली। उन्होंने बड़े भाई एवं मां को कहा कि अब आसूमल को साधु होने से बचाना हो तो एक ही चारा नजर आता है कि उसकी सगाई कर दी जाय। यह बात उनको शीघ्र ही जँच गई और वैरागी आसूमल का तीव्र विरोध होते हुए भी २० वर्ष की उम्र में जबरन उनकी सगाई कर कर दी गई।

संतों का भी शरीर का प्रारब्ध होता है। उनका अंतिम जन्म होने से इसी जन्म में पूर्व का ऋणानुबन्ध, लोगों का लेन-देन सम्पूर्ण रूप से चुकाना होता है, इसलिये उनके

जीवन में इस प्रकार का वैचित्र्य पूर्ण प्रारब्ध देखने में आता है। मंद और तीव्र प्रारब्ध तो काफी हद तक मोड़ा अथवा बदला जा सकता है, मगर यह तरतीव्र प्रारब्ध तो सबको भोगना ही पड़ता है। अनिच्छापूर्वक किया गया यह सगाई सम्बंध वैरागी आसूमल को बिलकुल पसन्द न था।

उनके सगे सम्बंधियों का इरादा सगाई के बाद तुरंत शादी (व्याह) करने का था, मगर जब जब शादी की बाबत बात चलती तो वे उदास हो जाते और उनकी आँखें सजल हो उठती। शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास शादी के फेरे फिरते फिरते वेदी पर से भाग खड़े हुए थे और गौतम बुद्ध रात्री के घने अंधेरे में अपनी पत्नी और नावजात बालक को छोड़कर चुपचाप अपने प्यारे की खोज में चल पड़े थे।

शायद मुझे भी ऐसा ही करना पड़ेगा-इस प्रकार के विचार उनके मस्तिष्क में बार बार उठते रहते थे। वे जानते थे कि प्रभु-मिलन ही मेरे जीवन का प्रमुख कर्तव्य कर्म है और वह किये बिना मुझे चैन नहीं होगा, फिर भी अपने सम्बंधियों को कैसे समझाएं?....और समझाने पर वे समझेगें नहीं। फिर क्या किया जाय...? इसी प्रकार विचार करते हुए लग्न की बात को टालते-टालते अढाई वर्ष निकाल दिये, मगर घर के लोगों ने उनकी न मानी और लग्न की तिथि निश्चित् कर ही दी।

यह बात मालूम होते ही वैरागी आसूमल को एक झटका सा लगा। तो क्या ये लोग मुझे बंधन में बांधकर

ही चैन लेंगे?....नहीं, यह मैं कदापि नहीं होने दूंगा। मगर मैं करूँ क्या....इस पशोपेश में आकर वे एकांत में बैठकर बहुत रोये और मन ही मन परमात्मा से अपना रक्षण करने लिये प्रार्थना करने लगे।

घर से पलायन

इसी पशोपेश में वैरागी आसूमल शादी के आठ दिन पूर्व ही चुपके से घर छोड़कर निकल पड़े। घर के लोगों एवं सम्बंधियों ने देखा कि आसूमल कहीं नजर नहीं आते तो उनमें हाय-तोबा मच गई। अब क्या करें, उनको कहाँ ढूंढे? इधर उधर खूब पूछा इस आशा में कि शायद किसी को कुछ बताकर गए हों या चिट्ठी-पत्री दे गए हों तो उनका कुछ पता चलें। मगर कहीं से उनके मिलने का कोई सूत्र ही नहीं मिला। आखिर बहुत खोज-बीन के पश्चात् भरूच में स्थित 'अशोक आश्रम' में वैरागी आसूमल के होने का पता लगा। कुछ समय बाद जब पुनः घर लौटे तो सब घर के लोगों की जान में जान आई। अब बड़े भाई एवं सम्बंधियों ने बड़े विनम्र होकर कहा:

"भाई! तुम्हारा लग्न तो निश्चित हो चुका है। अब तो हम सब की इज्जत आबरू का प्रश्न है। यह सब तुम्हारे हाथ में है। तुम चाहो तो हमें बचा सकते हो।....तुम लग्न के लिये राजी हो जाओ, बाकी हम वायदा करते हैं कि तुम्हारी साधना में हम बिलकुल विघ्नरूप नहीं बनेंगे। तुम्हारी साधना तुम्हारे ढंग से चालू ही रखना।"

दुबारा पलायन का प्रयास

घर पर शादी की तैयारियाँ तो हो ही चुकी थी। उनके घर लौटने से सबमें उल्लास छा गया। अब बारात की तैयारियाँ हुई और पूर्व निश्चित् तिथि को बारात अहमदाबाद से गांधीधाम के लिये रवाना हुई। वैरागी आसूमल वर (दूल्हा) तो बने थे, मगर ऊपर से ही। उनका मन बार बार इस धूम-धड़ाके वाले वतावरण में से भाग जाने को हो रहा था। उनके भीतर यही चिन्तन चल रहा था कि यह सब मेरे साथ क्या खिलवाड़ हो रहा है? वे अवसर ढूंढ़ रहे थे कि किसी प्रकार बच कर निकल भागें।

जब बारात पालनपुर पहुँची तो वहाँ गाड़ी थोड़ी देर के लिये रुकी। वहीं पर उन्होंने सबकी नजर बचाकर छिटक जाने की पूरी तैयारी की, मगर साथ वाले कुछ व्यक्तियों की अत्यधिक सावचेती के कारण वे सफल नहीं हो सके इस प्रकार जैसे तैसे बारात अपने गंतव्य स्थान गांधीधाम पहुँच ही गई

भीष्म प्रतिज्ञा

विधि के विधान अनुसार जैसे तैसे लग्न तो हो गया, मगर वैरागी आसूमल ने लग्न के समय मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा की कि 'जब तक आत्म-साक्षात्कार न हो जाय तब तक वे कुंवारे ही रहेंगे और पति पत्नी के संसार-व्यवहार से अछूते ही रहेंगे।' अपने इस दृढ़ संकल्प का पता जब

उनकी धर्मपत्नी को लगा तो एक बार तो उनको अपने भविष्य के बारे में बड़ी चिंता हुई कि इस प्रकार मेरे गृहस्थ जीवन का क्या होगा, मगर शीघ्र ही वैरागी आसूमल के थोड़े से सांनिध्य में रहने से उनके पूर्व के व्यावहारिक विचार बदल गए और उन्होंने भी अपने पूज्य स्वामी के धार्मिक एवं वैराग्यपूर्ण विचारों से सहमत होकर तपोनिष्ठ और साधनामय जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया।

पतिव्रता नारी के लिये पति ही परमेश्वर है। पति की आज्ञा ही परमेश्वर की आज्ञा है। पति की सेवा ही प्रभु सेवा है। धर्मशास्त्रों में वर्णित इस प्रकार के सभी गुण पूज्यमाता लक्ष्मी देवी के जीवन में सहज समाविष्ट थे। मेरे कारण अपने स्वामी की साधना में किसी प्रकार का विक्षेप न हों इसका वे पूरा पूरा ध्यान रखती थी।

गृहस्थी की घटियां

मगर ये दिन वैरागी आसूमल के लिये कठोर कसौटी के दिन थे। माया उनको अपने में लपेटने की पूरी कोशिश कर रही थी। उनकी माताजी, सगे-सम्बंधी एवं ससुराल-पक्ष के लोग कई प्रकार की योजनाएं करके हर प्रकार से उनको संसारी व्यवहार की तरफ मोड़ने का यत्न करने लगे। एक तरफ संसार के वैषयिक-भोग उन्हें पुकार रहे थे, तो दूसरी तरफ ईश्वर-भक्ति उनको ललकार रही थी। ऐसे अवसर पर अपनी इंद्रियों को पूर्णरूप से वश में रखते हुए ईश्वर-भक्ति में लगे रहना-यह कोई सामान्य कार्य नहीं था!

वैरागी आसूमल अपनी इन कठिन परीक्षा की घडियों में भी विचलित नहीं हुए। उनको हृदय की गहराई से बार बार कोई जैसे सचेत किये जा रहा था :

साधक न इसको भूल तू तेरा नहीं यह देह है।
धन धाम भी तेरा नहीं, तेरा नह यहीं गेह (घर) है॥
फंस तू न मायाजाल में, तू दिव्य से भी दिव्य है।
मत बंद काया मांही हो, तेरा न यह कर्तव्य है॥

इसलिये उन्होंने सांसारिक विचारों को क्षणमात्र के लिये भी अपने हृदय में स्थान नहीं दिया और अपनी वृत्ति ईश्वर की तरफ रखते हुए साधना चालू रखी।

साधना-पथ में साधक का आंतरिक संकल्प जितने प्रमाण में दृढ़ होता है उतने ही प्रमाण में उसके जीवन में बाहरी विरोधी परिस्थितियाँ कम मात्रा में प्रभावशाली सिद्ध होती हैं। आंतरिक दृढ़ता से बाहरी प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल परिस्थितियोंके रूपमें परिवर्तित हो जाती हैं। जो सच्चे हृदय से, पूरी तत्परता से प्रभुभक्ति में तल्लीन होता है उसकी लाज रखने को परमात्मा भी हर क्षण तैयार होता है।

संस्कृत भाषा का अध्ययन

लग्न के पश्चात् थोड़ा समय घर पर बिताने के बाद वैरागी आसूमल ने अपनी साधना को और गति देने के लिये संस्कृत का अध्ययन शुरू किया। इन दिनों वे घर पर बहुत कम रहते और रात्रि तो विद्यालय में ही व्यतीत करते।

लग्न के पश्चात् अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन जारी रहा। बचपन से ही उनकी स्मरणशक्ति तो तीव्र थी ही, इसलिये दस महीने के थोड़े ही काल में संस्कृत भाषा का उन्होंने अच्छा अध्ययन कर लिया। एकबार परीक्षा के चार दिन पूर्व रात्रि के ३ बजे एक संस्कृत श्लोक पढ़ते पढ़ते वे शब्दातीत ईश्वरी मस्ती में डूब गए। श्लोक थाः

सर्वं अधितम् तेन तेन सर्वं अनुष्ठितं।
येन आशा पृथक्कृत्वा नैराश्यं अवलम्बितं॥

उसने सारी पढ़ाई पूरी कर ली, सारे अनुष्ठान पूरे कर लिये, जिसने जगत की सारी भोगेच्छाओं का त्याग करके निरिच्छावस्था का अवलम्बन ले लिया।

इस श्लोक को पढ़कर वे ऐसी अलौकिक मस्ती में डूब गए कि फिर परीक्षा देने की खटपट को ही छोड़ दिया। अब वे वहाँ नहीं रुक सके और निकल पड़े। धन्य है संतों की मौज! सब आशाओं का त्याग कर अब आसूमल एक राम की ही आशा में वस्तुतः आशाराम बन गए।

सतत ईश्वर-चिंतन का संकल्प

इस के बाद वैरागी आशारामजीने कुछ धार्मिक स्थलों की यात्रा की। घूमते घूमते एक बार हिमालय की गोद में स्थित श्री केदारनाथ पहुँच गए। वहाँ दर्शन पूजा आदि के पश्चात् जब ब्राह्मणने 'लक्षाधिपति भवः' का उच्चारण

किया तो उनकी मुखमुद्रा बदल गई और उदास से होकर मन ही मन बोले-

"हे भगवान! मैं यहाँ मायाजाल से मुक्त होने के लिये आया हूँ न कि और अधिक फँसने के लिये। यहाँ भी नश्वर की याचना! तो फिर शाश्वत कहाँ मिलेगा?"

फिर से तुरंत उन्होंने नये सिरे से ब्राह्मण द्वारा पूजा करा के इस प्रकार संकल्प कियाः

"भले ही दिन में एक ही बार रूखा-सूखा खाने को मिले, दूसरी बार मांगे तो भी नहीं मिले, परन्तु हे ईश्वर! तेरा चिन्तन कभी न छूटे।"

आगे चल कर हमदेखते हैं कि हृदय की गहराई से किया गया उनका वही संकल्प सत्य सिद्ध होता है।

गृहत्याग का निश्चय

इस प्रकार वैरागी आशारामजी का वैराग्य जितना घर के लोग दबाना चाहते थे उतना ही वह बढ़ता जा रहा था। अब उनसे प्रभु का वियोग सहा नहीं जा रहा था। प्रभु मिलन में हो रहे विलम्ब को दूर करने के लिये एकांत में जाने की उनमें प्रबल इच्छा जग उठी। अतः वे रह न सके और अपनी पूज्य माताजी एवं धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी को यह साफ-साफ बता दिया कि मैं अपने ध्येय-'ईश्वर-प्राप्ति' के लिये घर छोड़ कर जा रहा हूँ। लक्ष्य सिद्धि के बाद पुनः लौट आऊँगा-ऐसा वचन देता हूँ।

उनका यह निर्णय सुनकर घर के लोग रो पड़े । कोई कितना ही पुनः लौट आने का वचन दें फिर भी मां को कभी संतोष हो सकता है ? और यह कोई धन कमाने के लिये देश-परदेश जाने की तो बात थी ही नहीं कि किसी निश्चत स्थान पर ही जायेंगे और पत्र व्यवहार होता रहेगा, फिर समय समय पर आकर मिलते रहेंगे । यह तो अज्ञात् में प्रवेश था । यह तो अज्ञात् काल के लिये वियोग था । ....और ईश्वर का मिलन ! यह कोई सीधी-सादी सरल बात है क्या ? जिस की प्राप्ति के लिये जन्म जन्म लग जाते हैं, जो मिलने से पूर्व न जाने कैसे-कैसे नाच भक्त को नचाता है ! और वह मिल ही जायगा यह भी कोई निश्चित है क्या ? फिर यह मेरा लाल मुझे फिर से मिलेगा कि नहीं ? जिस कलेजे के टुकड़े को इतने प्रेम से आज तक पाला पोसा है, क्या वह सदैव के लिये मुझ से अलग हो जाएगा....? यहाँ भी यह अपने प्रभु-प्रेम में इतना पागल रहता है कि खाना-पीना भूल जाता है, जैसे तैसे मैं प्रेम से खिला-पिला देती हूँ और इस का सब प्रकार से ध्यान रखती हूँ, मगर उधर....! उधर इसका कौन ध्यान रखेगा ? यह क्या खाएगा, कहाँ रहेगा, कहाँ सोएगा, उठेगा-बैठेगा ? ओह भगवान ! तू कैसा निष्ठुर है कि मेरे लाल को मुझ से अलग कर रहा है...! इस प्रकार की कल्पनाए करके ममता मयी माँ का हृदय रो पड़ा ।

माँ तो माँ ही थी-इतना सब होते हुए भी शायद

वह अपने मन को समझा लेती कि एक नहीं, दूसरा बेटा तो है, मगर वह धर्मपत्नी लक्ष्मी देवी जो अपने भविष्य के समस्त जीवन की बागडोर ने अपने एकमात्र स्वामी अपने पतिदेव को सोंप चुकी थी, उसके हृदय पर क्या बीत रही थी इसकी कौन कल्पना कर सकता है ? जिसके जीवन के सारे सपने अधूरे पड़े थे । होश संभालने के बाद वस्तुतः जिस के जीवन का प्रारंभ ही अभी अभी हुआ था, वह किसके सहारे अपना जीवन व्यतीत करेगी ? कहते हैं, वापस लौटूँगा-मगर कब....? यह कोई निश्चित् है ? कौन जानता है कल क्या होगा ? अपने भविष्य में अकेलेपन की कल्पना मात्रसे धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी की आँखों से गंगा-जमना बह चली । वे निःसहाय थी । क्योंकि वे जानती थी कि पतिदेव किसी के रोके आज तक नहीं रुके तो अब क्या रुकेंगे ? ओह ! प्रभु तूने यह कैसा विधान रचा है !

प्रभु प्रेम का विचित्र विधान

यह कैसा प्रभु प्रेम है ? यह कैसा ईश्वर है ? जब मिलता है तो अन्दर ही मिलता है, फिर भी उस से पूर्व यह कितना भटकाता है ? वाह प्रभु तेरी लीला ! भक्त ध्रुव की माँ को भी ऐसे ही रोना पड़ा था । गौतम बुद्ध की धर्मपत्नी यशोधरा को भी ऐसे ही रोना पड़ा था । बालक शंकराचार्य की मां को भी ऐसे ही रोना पड़ा था । स्वामी रामतीर्थ की धर्मपत्नी को भी ऐसे ही रोना पड़ा था । कोई क्या करे ? प्रभु का विधान ही विचित्र है ! वह किसी को

भी मिला है तो पूरी कसौटी करके ही मिला है। इस रास्ते में तो भाई का स्नेह, मां की ममता, पत्नी का प्रेम–सब को ताक पे रखकर आगे बढ़ना पड़ता है और पूरे प्राणों से उसे पुकारना पड़ता है। इसलिये कबीर दासजी ने तो साफ साफ कह दिया है:

कबीरा खड़ा बजार में लिये लकुटिया हाथ।
जो घर फूकें आपना, चले हमारे साथ॥

जो सब कुछ न्योंछावर करने को तैयार हो, उसे ही वह मिलता है।

वैरागी आशारामजी में यहाँ भक्त ध्रुव का प्रभु–प्रेम और गौतम बुद्ध का वैराग्य एक साथ हिलोरे ले रहा था। किसी के भी आँसू किसी की भी मोह–ममता उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकी। क्योंकि वे यह अच्छी प्रकार जानते थे कि इस शरीर के रहते यदि उस शाश्वत् को नहीं पाया तो यह जीवन व्यर्थ हो जायगा। प्रभु से मिलना है तो अकेले ही चलना होगा। वे भीतर ही भीतर अपने आप को समझा रहे थे:

छोड़ने के पहले इनको छोड़ दे ओ बेशहूर।
छोड़ना तुझको पड़ेगा एक दिन इनको जरूर॥
ऐश के सामान सब यों ही पड़े रह जाएंगे।
और यार तेरी लाश पे रोते खड़े रह जाएंगे॥

आत्म–साक्षात्कार के लिये गृहत्याग

इस प्रकार पूज्य श्री आशारामजी संवत २०२१ की फागण सुद ११ के पवित्र दिन को किसी भी मोह-ममता एवं अन्य विघ्न–बाधाओं की परवाह न करते हुए अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिये घर छोड़कर चल पड़े। जिस के हृदय में वैराग्य और प्रभुमिलन के लिये आतुरता की आग जल रही हो उसको जगत में कौन रोक सकता है?

'इस जीवन का बलिदान देकर भी अपने लक्ष्य की सिद्धि करके रहूँगा'–इस प्रकार का हृदय में दृढ़ निश्चय कर के पूज्यश्री भगवान श्रीकृष्ण की पवित्र लीलास्थली वृन्दावन की कुंजगलियों में पहुँच गए। फागण सुद पूर्णिमा अर्थात् होली के पवित्र दिन को उनके संसार तरफ के सभी विचारों का दहन हो गया। जो कुछ साथ में पैसे थे उनमें से कुछ का भंडारा किया, कुछ को दरिद्रनारायण में बांट दिया और उन में से बचे थोड़े से पैसों से कुछ दिन तक वहीं काम चलाया, फिर हिमालय में नैनीताल की ओर चल पड़े। नैनीताल में परम पूज्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज का सांनिध्य प्राप्त किया।

समर्थ गुरु की प्राप्ति कितनी दुर्लभ?

गुरु यदि श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हो तो शिष्य की सभी शंकाओं का समाधान कर सकते हैं। श्रोत्रिय यानी सभी शास्त्रों के वास्तविक गूढ़ रहस्य को जानने वाले और

ब्रह्मनिष्ठ यानी जिन को आत्म-साक्षात्कार हो चुका है, जिन की ब्रह्म में स्थिति है । ऐसे समर्थ गुरु का मिलना हर किसी के भाग्य में नसीब नहीं होता । कई ऐसे साधक विभिन्न अलंध्य, बीहड़ स्थानों पर भटकते हैं, मगर समर्थ गुरू के अभाव में उनका साधना पथ बहुत लम्बा हो जाता है । फिर या तो वे किन्हीं पाखंडी या किन्ही छोटे-मोटे चमत्कार दिखाने वाले गुरुओं के चक्कर में फंस जाते हैं । फिर न तो वे गुरु को छोड़ पाते हैं और न गुरु ही उन्हें छोड़ते हैं । ब्रह्मज्ञान पाना तो किनारे रह जाता है और वहाँ भी वे माया के लम्बे हाथों के खिलौने बन कर रह जाते हैं ।

स्वामी रामतीर्थने कहा है कि आत्मकृपा (स्वयं पर कृपा यानी प्रबल वैराग्य और ध्येय प्राप्ति के लिये तत्परता) के बिना गुरु कृपा नहीं होती और गुरुकृपा बिना ईश्वर कृपा संभव नहीं । इसीलिये कई संतों ने गुरू एवं गोविन्द साथ साथ खड़े तो तो पहले प्रणाम गुरु को करने का आदेश दिया है। सौभाग्य से पूज्यश्री तो आत्मकृपा कर चुके थे । अब तक का उनका सारा जीवन उस आत्मकृपा की ही तैयारी में व्यतीत हुआ था । उनकी तो ज्ञान प्राप्ति की भूख पहले से ही जगी हुई थी और अब परम पूज्य स्वामी लीलाशाहजी महाराज जैसे समर्थ सद्‌गुरु भी प्राप्त हो गए ।

समर्थ सद्‌गुरु की प्राप्ति के पश्चात् भी उन के चरणों में योग्य रीति से रहना, उनकी डांट-फटकार सहन करना,

उनके द्वारा खड़ी की गई कसौटियों में कसकर खरा साना सिद्ध हो जाना यह बहुत ही कठिन है । मिट्टी को घड़ा बनने में भी कितनी प्रक्रियाओं में से गुजरना पड़ता है ! पहले तो वह पैरों तले रोंदी जाती है, फिर कुम्हार के चाक पर चक्कर खाने पड़ते हैं, फिर धूप में सूखकर निमाड़े की अग्नि में सिकना पड़ता है । उसके बाद भी उस में पानी भरने से पहले कई लोगों के हाथ के टकोरे सहने पड़ते हैं । तब जाकर वह मिट्टी अपने में पानी भरने की क्षमता अर्जित कर पाती है ।

शिष्य को भी अपने अन्दर सद्‌गुरु की कृपा झेलने के लिये कई प्रकार की साधनाएं करनी पड़ती हैं, कई कसौटियों में से पार होना पड़ता है । और यह ईश्वरीय पद, यह आत्म साक्षात्कार, यह परम पद जिसके आगे कोई पद नहीं, जिसके लिये राजा लोग अपना समस्त वैभव तिनके की नाई त्यागकर किसी महापुरुष की खोज में जंगलों और पहाड़ों में भटकते फिरते थे, यह कोई साधारण बात नहीं है ! धन्य हैं ऐसे महापुरुष और धन्य है उनकी कृपा को हजम कर जाने वाले ऐसे योग्य शिष्य ! मनुष्य जाति का यह सौभाग्य है कि आज भी ऐसे महापुरुष ढूंढ़ने पर कहीं कहीं उपलब्ध हो जाते हैं ।

सद्‌गुरु स्वामी लीलाशाहजी

परमपूज्य स्वामी लीलाशाहजी के सांनिध्य में रहना पूज्यश्री के लिये एक प्रकार की अग्नि-परीक्षा ही थी ।

स्वामी लीलाशाहजी का नाम समस्त सिंधी जगत, देश-विदेश एवं अन्य लोगों में सुप्रसिद्ध रहा है। उनके द्वारा लोगों को ब्रह्मज्ञान का सत्संग तो मिलता ही रहता था, साथ ही साथ उनके आसपास चित्र विचित्र चमत्कार भी बहुत घटते रहते थे। उनका स्वभाव बहुत करुणापूर्ण था। उनके द्वारा कई अंधों को आँखें मिली हैं, कईयों के कुए का खारा जल उनके दृष्टि मात्र से मीठे जल में परिणीत हुआ है, कई दुःखी बेरोजगार गरीबों को नौकरी-धंधा मिला है, कई गरीब लड़कियों की रुकी हुई शादियाँ कराई गई हैं, कई दुखी असाध्य रोगों से पीड़ित रोगियोंने पुनर्जन्म पाया है-ऐसे और भी अनेक प्रकार के लाभ कई लोगों ने जो जो भी उनके सम्पर्क में आए सबने लिये हैं। फिर भी उन महापुरुष की महानता इन कार्यों से इतनी सिद्ध नहीं होती जितनी इस बात से कि ब्रह्मज्ञान की जो धारा उन्होंने बहाई उससे कई लोग नहा उठे।

गुरुदेव स्वामी लीलाशाहजी लोगों के लिये जितने करुणापूर्ण थे, शिष्यों के लिये उतने ही कठोर थे। वृद्धावस्था में भी उनका शरीर बड़ा बलिष्ठ था। किसी गल्ती पर वे जब किसी शिष्य को डांटते थे उनकी आवाज इतनी तेज और रूप तब उनका इतना उग्र होता था कि कच्चे कच्चे तो उनके सामने टिक ही नहीं पाते थे। उनकी तीव्र आवाज एवं उग्र रूप से अच्छे-अच्छों के हृदय हिल उठते थे। मगर फिर भी उनके अन्दर तो हृदय में अथाह करुणा

और प्रेम का झरना ही बहता था। जो कुछ ऊपर का उग्र रूप था, वह सब शिष्यों के आध्यात्मिक हित के लिये ही।

उनका स्वभाव बड़ा ही सरल था। एक बार बम्बई में एक भक्त के घर सत्संग कर रहे थे। उस समय उन्होंने कुछ लोगों से पूछा कि तुम कौन कौन और क्या क्या हो ? तो किसीने बताया मैं वकील हूँ, किसी ने बताया मैं डाक्टर हूँ, किसी ने व्यापारी, किसी ने कुछ तो किसी ने कुछ बताकर अपना परिचय दिया। फिर उन्होंने कहा-भाई ! तुम लोग डाक्टर, वकील, ऑफिसर आदि पता नहीं क्या क्या हो, मगर हम तो कुछ पढ़े नहीं, फिर भी तुम सब हमारे आगेऽऽऽ घास काटते हो। बोलो, काटते हो कि नहीं....?

सब बोले-जीऽऽऽ।

स्वामी लीलाशाहजी-हाँऽऽऽ, क्योंकि तुम सब ता पता नहीं क्या क्या बनकर बैठे हो, फिर भी अशांत हो और हम ऽऽऽ। हम कुछ नहीं हैं, फिर भी अह ! बादशाह हैं....। बोलो, हैं कि नहीं ?

सब-जी सांई, हैं ही।

अब स्वामी लीलाशाहजी जोर से हंस पड़े। उनके साथ बाकी लोग भी हंस पड़े। हंसी शांत होने पर स्वामी लीलाशाहजी बोले-

"क्या करें भाई....! यह आत्मधन है ही ऐसा। यह जिसे मिल जाय उसे सब मिल जाता है। इसके

आनन्द के आगे इन्द्रपद, ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी फीका नजर आता है । और जिसे यह नहीं मिलता और बाकी संसार का सारा ऐश्वर्य मिल जाय तो भी कुछ नहीं मिलता, क्योंकि समय आने पर वह छूट जाता है। इसलिये पाना है तो आत्मपद पाओ, अपने आपको पाओ, आत्मसाक्षात्कार करो। अन्यथा ये पद और प्रतिष्ठा तो मनुष्यों ने मनुष्यों को दी है । इन खिलौनो से राजी नहीं होना है। ये चीजें व्यवहार के लिये ठीक हैं, मगर सच्ची शांति तो अपने आपको जानने से ही मिलती है।"

ऐसे सरल, कठोर एवं इतने ही उदार हृदय सद्गुरु का सांनिध्य पूज्य श्री को मिला था । सद्गुरु ने पूज्यश्री की तेजस्वी मुखमुद्रा, एवं हृदय की आंतरिक दृढ़ता देखकर उनके पूर्व व्यतीत जीवन के बारे में प्रथम मिलन में ही सब कुछ जान लिया। फिर भी कहीं कच्चापन न रह जायं, इस हेतु से उनकी कई प्रकार की परीक्षाएँ और कसौटियाँ की। पूज्यश्री उन कसौटियों में से सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होते गए।

कंचन की कसौटी

पूज्यश्री को सद्गुरुदेव के पास एक ४॥ फीट ऊँची और ५ फीट लम्बी कुटिया मिली जिसमें कि छत एव दरवाजा नीचा होने के कारण झुक कर ही प्रवेश कर सकते थे एवं सोते समय पूरे पांव भी पसार नहीं सकते थे–ऐसी उस छोटी सी टूटी-फूटी लकडों की कुटिया में उन्हें रहना पड़ा। स्वयं

के पास थोड़े बहुत पैसे बचे थे, उनसे मूंग और नमक मंगा लिया। दिन में एक बार वे मूंग की दाल पकाकर उसमें थोड़ा नमक डालकर पी जाते थे । यद्यपि आश्रम के भोजनालय में भोजन बनता था, फिर भी उनको उधर से कोई आवकार नहीं मिलता था, । सद्गुरुदेव के पास प्रारंभ ही कैसी तितिक्षा सहन करने के साथ हुआ था !

पूज्यश्री दाल बनाने का समय छोड़कर शेष समय ध्यान, ईश्वरचिन्तन, सद्गुरुदेव का सत्संग सुनने और आश्रम की विविध प्रकार की सेवा में व्यतीत करते थे । कोई भी कार्य मुझसे ऐसा न हो जाय जिससे गुरुदेव अप्रसन्न हो जाएं– इस बात की पूरी पूरी सावधानी पूज्यश्री हर समय रखते थे । गुरुदेव के सम्मुख बहुत ही कम और मर्यादित तथा जितना आवश्यक हो उतना ही वे बोलते थे ।

सद्गुरु का आदेश

इस प्रकार ७० दिन लगातार कई प्रकार की कसौटियाँ सहन करते हुए भी एक दिन गुरुदेव ने कहा कि अब आप घर चले जाओ । घर पर ही ध्यान–भजन करना, क्यों कि आपकी शादी हो चुकी है । इस प्रकार स्वयं की बिलकुल इच्छा न होते हुए भी पूज्यश्री ने सद्गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और वे अहमदाबाद लौट आए । इस प्रकार उनके जीवन में संघर्षों की तो जैसे बाढ़ ही आई हुई थी।

साधना काल–एक भयंकर समरांगण

ऐसे अवसर पर यदि कोई कच्चा–पका साधक होता

तो....! सचमुच यह साधनाकाल एक भयंकर समरांगण है। इसमें युद्ध खेले बिना हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठे रहा जा सकता है ! ऐसे संघर्ष में से ही तो जीवन कुन्दन की की भाँति चमक कर बाहर आता है ।

संतों ने ठीक ही कहा है कि ईश्वरी रास्ते चलना -यह कोई ऐसों वैसों का काम नहीं है ! इस विषय पर गुजराती में बडी सुन्दर काव्य पंक्तियाँ हैं:

हरि नो मारग छे शूरा नो, नहीं कायरनुं काम जोने।
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वलता लेवुं नाम जोने॥
सुत वित्त दारा शीश समरपे, ते पामे रस पीवा जोने॥
हरि नो....
मांह्य पडया ते महासुख माणे, देखणहारा दाजे जोने।
तीरे उभा जुए तमाशो, ते पामे नव कोडी जोने॥
हरि नो ...
मरण आगमे ते भरे मुट्ठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने।
माथा साटे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहीं सहेल जोने॥
हरि नो....
राम अमल मा राता माता, पूरा प्रेमी परखे जोने।
प्रीतमना स्वामीनी लीला, रजनी-दिन निरखे जोने॥
हरि नो....

भावार्थ-'यह ईश्वरी मार्ग शूरवीरों के लिये हैं। इसमें कायरों का काम नहीं है। जो अपना (अहं का) सिर

उतार कर देते हैं, वे ही प्रभु का इस प्रकार नाम ले सकते हैं। जो पुत्र, धन, पत्नी और अपना सिर यानी स्वयं को समर्पित करते हैं, वे इस प्रभुरस का पान कर सकते हैं।

इस रास्ते पर जो चल पड़े, वे ऐसे महान सुख का अनुभव करते हैं कि उनको देखने वालों को ईर्ष्या होती है। मगर जो किनारे रहकर तमाश-बीन बने रहते हैं, वे इस रस की एक बूंद भी नहीं प्राप्त कर सकते।

ईश्वर के मार्ग पर चलने वाले उन मस्त फकीरों को मौत भी नहीं डरा पाती। मौत का दुःख भी उनके दिल को दुखी नहीं कर सकता। मौत का सामना करने के लिये वे हर समय तैयार रहते हैं। अपने सिर के बदले ऐसी मूल्यवान वस्तु (ईश्वरी-प्रेम) प्राप्त करना सरल नहीं है !

अपने आत्माराम की अमली-मस्ती में ऐसे ईश्वर-प्रेमी डूबे ही रहते हैं और उनको ऐसे ही पूरे प्रेमी समझ सकते हैं जिन्होंने उस प्रेम-सुधा का पान किया हुआ हो। हरएक उनको पहचान नहीं सकता। रात-दिन वे अपने परम प्रभु की लीलाको ही देखते रहते हैं और उसी में मस्त रहते हैं।'

नर्मदा किनारे

ऐसी विपरीत परिस्थितियाँ भी पूज्य श्री के ईश्वरी मार्ग पर बढ़ने के उत्साह को भंग नहीं कर सकी। सद्-गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर पूज्यश्री अहमदाबाद लौट आए और तेरह दिन यहाँ रुके रहे। परन्तु हृदय में तो

वैराग्य की बाढ़ आई हुई थी। वनराज केसरीसिंह कभी कच्चे धागों से बन्धा रह सका है? ऐसे ही जिसके हृदय में वैराग्य की आग जल रही हो उसको आसपास का राग-पूर्ण एवं मोहयुक्त वातावरण का कपड़ा कब तक छुपाए और रोके रख सकता है? पूज्यश्री चौदहवे दिन ही बिना किसी को बताये अहमदाबाद से निकल पड़े और पवित्र नर्मदा किनारे स्थित 'मोटी कोरल' (बडौदा जिला) पहुँच गए। वहाँ अज्ञात् रहकर साधना करने लगे।

मोटी कोरल में नर्मदा किनारे स्थित रामनिवास में उस समय एक सात्विक संत श्री लालजी महाराज रहते थे। उन्होंने एक बार एकांत में पूज्यश्री को ध्यानस्थ अवस्था में देखा तो उनको बड़ा विस्मय हुआ कि यह कौन है? फिर यह सोचकर कि कोई विद्यार्थी अपने घर से नाराज होकर ऐसे ही आ गया होगा—उन्होंने उस तरफ विशेष कोई ध्यान नहीं दिया। यहाँ भी पूज्यश्री थोड़े चने और मूंग रात को पानी में भिगो दिया करते और सुबह उनको खा कर क्षुधा-शांत कर लेते। थोड़े दिन इसी प्रकार चलता रहा। मगर कई दिन तक लालजी महाराज ने उन्हें वहीं फिर फिर से देखा तो उनसे रहा नहीं गया और किसी एक व्यक्ति को छुपकर उनके ऊपर नजर रखने को सचेत कर दिया।

मगर अधिक दिन तक लालजी महाराज भी अपनी जिज्ञासा नहीं रोक सके और एक दिन पूज्यश्री से प्रत्यक्ष भेंट की। आमने सामने मिलने और बातचीत करने से

उनको पता लगा कि यह तो जान हथेली पर लेकर ईश्वरी मार्ग पर चल रहा कोई सच्चा पथिक है। धीरे धीरे अन्य लोगों को भी पूज्यश्री के बारे में खबर पड़ी। फिर तो पूज्यश्री लालजी महाराज तथा आदरणीय कृष्णाबहन अपने प्रेमपूर्ण स्वाभाव के वश हो श्री पंचकुबेरेश्वर मंदिर के पास में नर्मदा के बिलकुल किनारे स्थित दत्तकुटीर में आग्रह कर पूज्यश्री को ले आए। 'जो ईश्वर को भजता है उसे ईश्वर भजता है' कहावत के अनुसार पूज्यश्री की साधना में इस प्रकार वही प्रभु विभिन्न रूपों में अनेक प्रकार से सहायता भी कर रहा है—ऐसा इस प्रकार की घटनाओं से पूज्यश्री को अनुभव हो रहा था।

नर्मदा मैया का 'पावन-तट' तप करने के लिये बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। भारत के कई धर्म-प्रेमी लोग एवं साधक इस नर्मदा मैया की पूरी प्रदक्षिणा करते हैं और प्रदक्षिणा करते समय अपना सब कुछ स्वाहा करके कई प्रकार के अलौकिक आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करते हैं। आज भी कई प्रकार के साधु-संत एवं अन्य 'नर्मदेऽऽऽहर' का गगन भेदी नाद करते हुए प्रदक्षिणा में रत उधर देखे जा सकते हैं।

चालीस दिन का अनुष्ठान

पूज्यश्री ने यहाँ एक चालीस दिन का अनुष्ठान प्रारंभ किया। कई अन्धेरी और चांदनी रातें यहाँ पूज्यश्री ने नर्मदा मैया की विशाल खुली बालुका में प्रभु-प्रेम की अलौ-

किक मस्ती में बिताई। प्रभुप्रेम में उन्मत्त पूज्यश्री को यहाँ भूख-प्यास का भी भान नहीं रहता था। कैसे-कैसे अलौकिक अनुभव इस दौरान में उन्हें हुए उनका वर्णन लेखनी द्वारा संभव नहीं है। गुड़ कैसा मीठा होता है, यह तो गुड़ खानेवाला ही अनुभव कर सकता है।

जीवन और मृत्यु के बीच

एक बार 'चाणोद करनाली' के पास पूज्यश्री प्रभुप्रेम में उन्मत्त नर्मदा के किनारे पागल की तरह बैठे थे। प्रभु विरह में मन ही मन वे बोलेः

'वाह प्यारे! तुम कब तक मुझसे छुप-छुप कर इस प्रकार बचते रहोगे? क्या अभी भी तुम सोचते हो कि मेरे हृदय में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी सांसारिक विषय की इच्छा शेष बची है? क्या अब भी तुम्हें मेरा यह विश्वास दिलाना बाकी रह गया है कि तुम्हारे बिना अब मैं नहीं रह सकता? तो यह लो....'

कहकर पूज्यश्री ने खाने के लिये जेब में रखे हुए कुछ चने आदि नर्मदा में फेंक कर बहा दिये और वहीं बैठ गए। और तो पास में कुछ था भी नहीं।

रात्री का घना अन्धेरा फैलता गया। कितना समय बीता इसका कोई भान रहा नहीं। थोड़ी देर में तेज हवा और फिर आँधी चलने लगी। पानी भी बरसना शुरु हो गया। ठंडी हवा चलने लगी। बहुत देर बाद पूज्यश्री उन्मत्त से वहाँ से उठ खड़े हुए और थोड़ी दूर स्थित



आ गया आना जहाँ, पहुँचा वहाँ जाना जहाँ।
अब नहीं आना न जाना, काम क्या बाकी रहा?



इक खुदमस्ती बिन और मस्त,
सब फंसे अविद्या दलदल में।



पूज्यश्री के पास जो भी आता है यहाँ तक कि पक्षी भी...उनके उद्धार प्रेम से नहा उठता है



कीर्तन द्वारा आत्ममस्ती में भक्तों को झुमाते हुए... 'पूज्यश्री'

मछलीमारों की झौंपडियों की तरफ चल पड़े। फिर एक बन्द मकान के बरामदे में ध्यानस्थ हो बैठ गए। बाहर का कुछ भान था नहीं। बिखरे हुए कुण्डलाकार बाल, चेहरे पर घनी दाढ़ी और फिर ठंड के कारण ऊपर सिर्फ चादर ओढी हुई होने से वे ऐसे लग रहे थे कि रात के अन्धेरे में उन्हें इस अवस्था में कोई देखें तो वस्तुतः डर कर भाग उठे।

और हुआ भी ऐसा ही। थोड़ी देर बाद मध्यरात्रि को पास के मकान में से एक व्यक्ति पेशाब करने के लिये बाहर आया तो अनायास ही अंधेरे में चुपचाप बैठे हुए पूज्यश्री पर उसकी नजर पड़ी। 'इतनी रात्रि को और इस प्रकार का डरावना सा व्यक्ति....! हो न हो, यह जरूर कोई डाकू लूटपाट करने के इरादे से यहाँ आया होगा और यहाँ छुपकर बैठा है'– यह सोचकर बिना किसी प्रकार की आवाज किये वह चुपचाप लौटा और सारे मोहल्ले के लोगों को जगाकर इस बात की खबर कर दी।

फिर तो क्या था! धारिया, लाठी, कुल्हाड़ा, भाला आदि जो जो भी जिसके हाथ में आया, ले-लेकर दौड पड़े और पूज्यश्री को घेर कर खड़े हो गए। पूज्यश्री को तो कुछ भान था ही नहीं कि उनके आसपास क्या हो रहा है! परन्तु शोर-गुल होने से उनका ध्यान टूटा। उन्होंने आँखें खोली तो देखा, सामने शस्त्रों से सुसज्जित हमला करने को तैयार लोगों की भीड़! मगर किसी को हिम्मत नहीं हुई कि पूज्यश्री पर किसी प्रकार का वार करें। सबमें अपना ही आपा, अपना

राम अनुभव करने वाले को किसका भय और कैसा भय? और जिसको जीने की पड़ी हो उसे मौत का भय होता है। यहाँ तो जीवन और मौत सब कुछ प्रभुमय ही बना हुआ था।

पूज्यश्री ने एक सरसरी निगाह सामने खड़े सब लोगों पर डाली, फिर शांत एवं गंभीर भाव से उठकर ऊपर का वस्त्र ठीक किया और एक ओर को चल पड़े। लोगों के धारिये और लाठियाँ आदि हाथ के हाथ में ही रह गए। सबको अब अपनी गैर-समझ एवं भूल पर पश्चाताप होने लगा। उन्होंने पूज्यश्री से माफी मांगी और वहीं रुक जाने के लिये कहा, मगर वे रुके नहीं और चल पड़े।

जाको राखे सांईयां मारी सके न कोय।
बाल न बांको करि सके, जो जग वैरी होय ॥

एक और कसौटी

अबतक पूज्यश्री ने कम कष्ट नहीं उठाए थे प्रभु प्राप्ति के लिये! हिमालय की कन्दराओं का सहवास किया, पत्थर की शिलाओं को बिस्तर बनाया, जहाँ जहाँ रागमय वातावरण था उससे बचे, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति सब सहन किये, जहाँ जीवन और मौत में एक तिनके भर का अन्तर हा-ऐसे ऐसे पहाडी स्थानों आदि में जान हथेली पर लेकर घूमे, किसी भी प्रकार का सांसारिक चैन लेने के लिये कहीं भी नहीं रुके, फिर भी

अभी तक प्रकृति की परीक्षाओं ने उनका पीछा नहीं छोड़ा।

इन्हीं दिनों जबकि वे चैतन्य महाप्रभु की नाई अपने प्रभु-प्रेम में बांवरे होकर घूम रहे थे उनके घर के लोगों को इस बात का पता लग गया कि वे 'मोटी कोरल' हैं। बस, फिर क्या था...उनके मातुश्री एवं धर्मपत्नी उनको वापस लौटा ले जाने के लिये आ पहुँचे। पूज्य श्री को इस अवस्था में देखकर उनकी मातुश्री एवं धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी फूट-फूट कर रो पड़े। इस करूणाजनक दृश्य को देख कर ऐसा कौन पाषाणहृदय मनुष्य होगा कि जिस का हृदय न पसीज उठे?

घर के लोगों ने पूज्य श्री से विनती की कि 'आपके बिना वहाँ किसी को भी चैन नहीं पड़ता है। सारा घर सूना सूना लगता है। आपको साधना करने से हम नहीं रोक रहे हैं, मगर आप घर पर हमारे सामने रहकर साधना करें। हम विश्वास दिलाते हैं कि हमारे द्वारा हम किसी भी प्रकार का विक्षेप आपकी साधना में नहीं होने देंगे। मगर आप घर चलिये।....आप हमारे साथ नहीं चलेंगे तो हम भी घर नहीं लौटेंगे।'

पूज्यश्री का हिमालय सा हठ

सभी लोग एक तरफ थे, मगर पूज्यश्री अपने पवित्र निश्चय पर अडिग रहे। संत श्री लालजी महाराज का हृदय भी यह कारुणिक दृश्य देखकर पसीज उठा। उन्होंने भी जब पूज्य श्री को समझाते हुए घर लौट जाने का आग्रह किया तो पूज्यश्री एक दम दृढ़ता से बोल उठेः

"देखिये जी, आप जैसे साधना करते हैं, वैसे ही हम यहाँ साधना करते हैं। इस हेतु से आपकी हमारी मित्रता भी है, यह ठीक है, परन्तु यदि आप हमको साधनामार्ग से भटका कर घर के मोह में फंसाने में सहयोग करेंगे तो आपका रास्ता अलग हमारा रास्ता अलग...।"

इस प्रकार पूज्य श्री आंतरिक रूप से अपनी बात पर बिलकुल अड़िग खड़े थे।

आखिर चालीस दिन के अनुष्ठान की पूर्णाहुति हुई। उसके बाद मोटी कोरल गाँव से पूज्य श्री की बिदाई के समय का दृश्य बड़ा ही हृदय-द्रावक था। कोरल से पूज्य श्री को भावभीनी विदाई देने हेतु सारा गांव इकट्ठा हो गया था। सारे गांव में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बाकी बचा होगा जिसने कि इस विदाई समारंभ में भाग न लिया हो। पूज्य श्री के वियोग के समय अनेक हृदय रो उठे। क्योंकि पूज्यश्री के प्रति सभी को अत्यधिक आंतरिक प्रेम था। गांव के सभी लोग एवं पूज्य लालजी महाराज भी जो सामान्य तया बहुत कम बाहर आया करते थे और मौन रखते थे स्टेशन तक पूज्य श्री को छोड़ने आये। पूज्य श्री ने सबसे भावभीनी बिदाई लेकर अहमदाबाद की ओर प्रयाण किया।

वाह फकीरी

परन्तु संतों के हृदय का माप कौन निकाल सका है? अहमदाबाद आने के लिये बीच में मियाँगांव स्टेशन पर गाड़ी बदलनी पड़ती है। उस स्टेशन पर पहुँचकर पूज्य श्री

ने अपनी मातुश्री और धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी को गाड़ी के डिब्बे में बिठाया, मगर स्वयं चलती गाड़ी से उतर पड़े। सांसारिक दृष्टि से मां और पुत्र का नाता, पति और पत्नी का नाता बड़ा ही निकट का नाता है। पुत्र को मां से अधिक और पति को पत्नी से अधिक प्रेम और कौन दे सकता है? मगर उस प्रेम को प्रभु के लिये बिल्कुल ही ठोकर मार देना–यह कोई बच्चों का खेल नहीं है! क्या उस समय हृदय को वज्र से भी अधिक कठोर नहीं करना पड़ा होगा? मगर पूज्य श्री के होठ तो उस समय अपनी वैरागी मस्ती में यही गा रहे थे:

हुआ जो फकीर तो रहा नाता किसी से क्या?
छोड़ा जो घर तो रहा रिश्ता किसी से क्या?
छोड़ अपने दिलबर को मिलना किसी से क्या?
तू बडी न बेल पड़ा अपने सिर खेल बाबा!
हुआ जो फकीर....

पुरुषार्थ से पथ में किसी भी प्रकार के विघ्न का प्रतिकार करके सफल हुआ जा सकता है–यह पूज्यश्रीने सिद्धकर दिया।

पुनः सद्गुरु के सांनिध्य में

पूज्यश्री वहाँ से सामने वाली दूसरी गाड़ी में बैठकर दूसरे दिन प्रातः बम्बई में 'गणेशपुरी' पहुँच गए। उस समय गणेश पुरी में ही सदगुरुदेव प. पू. लीलाशाहजी महाराज

पधारे हुए होने से पूज्य श्री को फिर से उनका सान्निध्य लाभ प्राप्त हुआ। उसी दिन नित्य कर्म से निवृत्त हो प. पू. सद्गुरुदेव ने पूज्यश्री को अपने पास बुलाया और उनकी अपनी साधना के प्रति इतनी अड़िगता देखकर उनको बड़ी प्रेमभरी दृष्टि से देखा। अपने साधक को ईश्वरी मार्ग पर इतने उत्साहपूर्वक आगे बढ़ता हुआ देखकर सद्गुरुदेव के हृदय से आशीर्वाद का दरिया उमड़ पड़ा।

आत्मनिष्ठ महापुरुष में आँख की पलक झपकते जितने क्षण में साधक के जन्म जन्मांतर का फासला दूर करने का अमाप सामर्थ्य होता है। ऐसे महापुरुष अपनी एक क्षण की दृष्टि मात्र से अपने सत्पात्र शिष्य को इतना कुछ दे सकते हैं जिसके आगे संसार का तो क्या इन्द्र का वैभव भा फीका और नीरस लगता है। परमपूज्य सद्गुरुदेवने पूज्यश्री को प्रेम से अपने पास बैठाकर विशेषरूप से उन्हीं के लिये 'श्री पंचदशी' नामक ग्रंथ के सातवे प्रकरण का पठन शुरू कराया।

आत्म-साक्षात्कार

संवत् २०२१ आसोज सुद २ के दिन दोपहर के ढाई बजे उस परम सौभाग्यशाली घड़ी का उदय हुआ जिसकी वर्षों से प्रतीक्षा हो रही थी। जिस पद को प्राप्त करके उससे ऊँचा कोई पद प्राप्त करना शेष नहीं रहता, जिस लाभ को प्राप्त करने के बाद कोई लाभ प्राप्त करना शेष नहीं रहता, जहाँ से कोई पुण्य ऊपर उठा नहीं सकता और

कोई पाप नीचे गिरा नहीं सकता, जो पद प्राप्त करना इस मनुष्य जीवन का परम कर्तव्य माना गया है, जिसकी महिमा वेद और उपनिषद आदि काल से गाते आ रहे हैं, जहाँ सुख और दुःख की तनिक भी पहुँच नहीं है और आनन्द ही आनन्द है आर जिसका वर्णन शास्त्रों एवं ऋषि मुनियों ने वर्णनातीत बताया है, जिसे भगवान श्री कृष्ण ने 'तद्धाम परमं ममः' कहकर गीता में उल्लेख किया है उस परम आनन्द-मय पद में परमपूज्य सद्गुरुदेव की परम कृपा से पूज्य श्री की अवस्थिति हुई !

इसी पद की प्राप्ति के लिये योगी योग करता है, ध्यानी ध्यान लगाता है, तपस्वी तप करता है, भक्त भक्ति करता है। यही वह पद है जिसके लिये जन्म जन्मांतर योग और ध्यान करते व्यतीत हो जाते हैं। यही वह पद है जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी फीका पड़ जाता है। यही वह पद है जहाँ किसी वरदान और अभिशाप की भी पहुँच नहीं होती। यही वह पद है जिसमें स्थित होकर योगी जन्म मरण आदि दुःखों के सभी भयों से मुक्त हो जाता है। श्रुति जिसके लिये कहती है:

'न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते।'

उस परम पद में स्थित होने के बाद योगी को कोई कर्तव्य शेष नही रहता। उसके सारे कर्तव्य पूरे हो जाते हैं–

तस्य कार्यं न विद्यते, नैव तस्य कृतेनार्थः।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं :

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।

हे पार्थ ! यह ब्राह्मी स्थिति है जिसे प्राप्त करके पुरुष फिर मोह में नहीं पड़ता ।

इस पद में अवस्थित पुरुष महापुरुष कहलाता है । महापुरुष यानि जो महान् तत्त्व 'आत्मतत्त्व' में स्थित है । अब उस महापुरुष को संसार का कोई भी रागद्वेष प्रभावित नहीं कर सकता, संसार ही के क्या स्वर्ग के सर्वोच्च भोग एवं ऐश्वर्य भी प्रभावित नहीं कर सकते । वह परम स्वतंत्र हो जाता है । संसार के कोई भी विधि नियम उसको बांधने में समर्थ नहीं हैं । जो इस पद पर आरूढ हो गया, वह माया के तीनों गुणों से पार हो चुका । अब तो जब तक उसका शरीर टिका है तब तक संसार के लोग उससे अपने आत्मकल्याणार्थ लाभ ले लें—यह उनका सौभाग्य, मगर वह स्वयं अब संसार से कोई लाभ लेने के लिये गुलाम नहीं । इसी लिये तो ऐसे महापुरुषों को 'फकीर' कहा गया है । फकीर यानी 'मैं ब्रह्म हूँ' इसमें जो संशय था उसकी उसने फांकी कर ली है । उसने अपने आप को जान लिया है । आत्मानुभूति सम्पन्न ऐसे महापुरुष के लिये शास्त्र कहते हैं: अब ब्रह्माजी भी आकर उसे कहे कि तुम ब्रह्म नहीं हो, देह हो तो वह कहेगा:

'आपकी सलाह के लिये धन्यवाद ! मैंने जो जाना है—अनुभव किया है, वही सत्य है । आप अपना काम करें ।'

ऐसी निःसंशयात्मक स्थिति !

महाराज जनक को गुरुकृपा से जब यह अनुभूति हुई तो वे आश्चर्य चकित रह गए । जिसके बारे में कई शास्त्रों में पढा था, कई विद्वानों से सुना था, कई कल्पनाएं की थी, मगर जब अनुभव हुआ तो वह एकदम निराला ही था, अनुपम था । जिसे आज तक कभी सुना नहीं, देखा नहीं, जाना नहीं, कभी कल्पना में जो आया नहीं-रामकृष्ण परमहंस जिसके लिये कहते हैं कि वह ईश्वर कभी किसी की वाणी द्वारा जूठा नहीं हुआ, अर्थात् उसका वर्णन करने में कोई सफल नहीं हुआ—उसका अनुभव ! इसलिये जनक पहले तो एकदम चौंक उठे, अवाक् रह गए, फिर बोले:

आश्चर्य ! परम आश्चर्य !!

बार बार बोल उठे :

आश्चर्य ! परम आश्चर्य !!

अहो निरञ्जन शान्तो बोधोऽहं प्रकृते परः ।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडंबितः ॥२॥
अहो अहं नमो मह्यं विनाशो यस्य नास्ति मे ।
ब्रह्मादिस्तंवपर्यन्त जगन्नाशेऽपि तिष्ठतः ॥११॥

(अष्टावक्र गीता अ. २)

जनक कहते हैं:

मैं निर्दोष, शांत, बोधस्वरूप और प्रकृति से परे हूँ ! अहो ! कितने आश्चर्य की बात है कि फिर भी मैं इतने समय तक मोह द्वारा ठगाया हुआ था !

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त जगत का नाश होते हुए भी मेरा (आत्मा का) कभी विनाश नहीं होता, ऐसा मुझको मेरा नमस्कार हो। अहो! मैं कैसा आश्चर्यभरा हूँ!

तस्मै श्री गुरुवै नमः

इस प्रकार आत्म–साक्षात्कार यानी ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु की शिष्य पर आत्यंतिक कृपावृष्टि का होना। इसीलिये तो गुरु के प्रति कैसी भक्ति हो इसके लिये श्रुतिने कहा है:

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौः।

जैसी भक्ति परमात्मा में हो वैसी ही दृढ़ अनुरागपूर्ण भक्ति अपने गुरु में होनी चाहिये।

श्रीमद्‌भागवत में भी कहा गया है:

असंकल्पात् जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
एतत सर्व गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्॥

काम क्रोध आदि मनोविकारों को जीतना बड़ा कठिन है, परन्तु यदि अपने गुरुदेव में पूर्ण भक्ति हो तो मनुष्य सब दोषों पर बड़ी सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता है।

गुरुभक्ति में मनुष्य का अहं ही तो बहुत बड़ी बाधा होकर खड़ा रहता है। उसी अहं को धोने हेतु सारे जप, तप, तीर्थ, सेवा आदि उपाय हैं। ज्यों ज्यों यह अहं गलता है त्यों त्यों अंतकरण शुद्ध होता है और ज्यों ज्यों अंतःकरण शुद्ध होता है त्यों त्यों गुरुकृपा को झेलने और पचाने की

ताकत शिष्य की बढ़ती जाती है। पूज्यश्री की अब तक की सारी साधना और प्रबल वैराग्य ने अपने सद्‌गुरुदेव के हृदय को कृपावृष्टि के लिये उमड़ उठने को बाध्य कर दिया था। वर्षों से गुरु ऐसे ही सत्पात्र शिष्य की खोज में रहते हैं। वह घड़ी धन्य हो जाती है जिस समय गुरु और शिष्य का ऐसा आकर्षण भरा मिलाप होता है! वह दिन धन्य होता है जिस दिन सदियों सदियों और जन्म जन्मांतरों की यात्रा से थके–प्यासे चातक सम शिष्य को गुरुकृपा रूपी अमृत जल की प्राप्ति होती है! वे क्षण धन्य होते हैं जिस समय गुरु अपना गुरुपना और शिष्य अपना शिष्यपना भूल जाते हैं और दोनों के हृदय एक-दूसरे से मिलने के लिये उमड़ उठते हैं।

मगर वे क्षण कब आते हैं? उन क्षणों के लिये कितनी बड़ी योग्यता शिष्य को हासिल करनी पड़ती है! भगवान श्रीकृष्णका अपने भक्त अर्जुन के ऊपर बहुत प्रेम उमड़ आने पर वे उसे साक्षात्कार न कराकर पहले उसे अपने विश्वरूप का दर्शन कराते हैं, फिर भी अर्जुन की अभी तक पात्रता पूरी सिद्ध न होने के कारण वह उससे पूरा लाभ न लेकर भयभीत हो जाता है। ज्ञानेश्वरी गीता में श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं:

"भगवान ने अर्जुन को अपनी महिमा का सर्वोत्तम भाग विश्वरूप दिखला दिया, इससे अधिक वे क्या प्रेम भावना प्रकट करते?"

(अ. ११–५०)

"...अरे ! (भगवान कहते हैं) मैंने तुझे जिस विश्व रूप का दर्शन कराया, वह तप करने पर शिवजी को प्राप्त नहीं हो पाता। अष्टांग योग साधन करने वाले योगी चाहे अपनी काया को क्षीण कर डालें, तो भी विश्वरूप के दर्शन नहीं पा सकते। 'यह विश्वरूप क्षण भर को ही देखने को मिल जाय' यही विचारते हुए देवों की आयु पूरी हो जाती है। चातक जिस प्रकार मेघ की राह देखता रहता है, उसी प्रकार देवता और मनुष्य जिसके लिये आठों प्रहर इच्छा करते हैं, फिर भी उस स्वरूप का दर्शन नहीं पा सकते—वही विश्व रूप तुमको प्रत्यक्ष महाआनन्द के साथ प्राप्त हो गया।" (श्लोक २२.)

श्रीज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि अर्जुन को भयभीत देखकर भगवान कृष्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगे—

"तेरे जैसा अविचारी मैंने कहीं नहीं देखा। तुझे तो यह अद्वितीय लाभ प्राप्त हुआ और तू उससे सन्तुष्ट न होकर भयभीत हो रहा है! मैं दूसरे लोगों पर तो बाह्य रीति से ही प्रसन्न होता हूँ, पर तुम्हारे लिये आंतरिक प्रसन्नता होने से ही मैंने अपना सब रहस्य प्रकट करके इतना विशाल रूप धारण किया है।" (श्लोक ४९)

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं:

"सुवर्ण के डले से आभूषण बनाया जाता है, अगर वह पसन्द न आए तो पुनः डला ही बना दिया जाता है—इसी प्रकार अर्जुन के प्रेम के लिये भगवान ने विश्वरूप धारण किया था, पर जब वह उसे नहीं भाया तो पुनः पहला ही रूप धारण कर लिया।" (श्लोक ११-५०)

स्पष्ट है कि भगवान की, तत्त्वज्ञ महापुरुषों की प्रेम-धारा तो शिष्यों पर बरसने को आतुर ही होती है सदैव, क्योंकि यह उनका स्वभाव होता है, मगर शिष्य भी तो वैराग्य, तप एवं गुरुभक्ति की अग्नि में तप कर कुंदन बन जाना चाहिये!

और पूज्यश्री के लिये यह वह घड़ी थी जब सद्गुरु ने अच्छी प्रकार जाँच पडताल की होगी, देखा-भाला होगा और उन्हें तपा हुआ कुन्दन ही पाया होगा। उनकी वर्षों की-सदियों की, जन्मजन्मान्तरों की साधना-यात्रा का इस घड़ी में अन्त आ गया। बचपन से ही साधना में अज्ञात्-रूप से एवं मोटी कोरल में ध्यानस्थ होकर जिस अलौकिक आनंद की अनुभूति होती थी उसका वास्तविक स्वरूप समझ में आया और निरंकुश तृप्ति का अनुभव हुआ। सद्गुरुदेव ने उन्हें अपने घर में घर दिखा दिया था। जिस घर के लिये वे पहाड़ों की गुफाओं में, घने बीहड़ जंगलों में, पवित्र नदियों के किनारों पर घूमे थे, पत्थरों की चट्टानों पर सोये थे, कंटकाकीर्ण एवं पथरीले रास्तों पर चले थे, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास सहन की थी और जिस आनन्द स्वरूप परमप्रिय प्रभु के लिये कई रात्रियाँ आँखों में आँसू भरे हुए रो-रो कर व्यतीत की थी, सद्गुरुदेव की कृपा से जब उस परमानन्द स्वरूप परमात्मा को अपने ही भीतर प्रकट हुआ स्पष्ट अनुभव किया तो वे बोल पड़े:

जिन्हें मैं ढूँढता था आसमानों में जमीनों में,
वो निकले मेरे जुलमतखानाए दिल के मकीनों में॥

वो थे न मुझसे दूर न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर तो नजर का कसूर था॥

निजस्वरूप आत्मदेव की उस अलौकिक मस्ती में पूज्य श्री ढाई दिन तक ऐसे हीउ न्मनी सी अवस्था में पड़े रहे। कहना चाहिये-शरीर वहाँ पड़ा रहा। वे कहाँ थे उस समय यह नहीं कहा जा सकता। वह अवस्था वाणी का विषय है भी नहीं। उस समय शरीर का कोई भान ही उन्हें नहीं था। उनका शरीर ही केवल कबीर के शब्दों में जैसे बोल रहा था:

हम वासी उस देश के जहाँ पार ब्रह्म का खेल।
दिया जले अगम का बिन बाती बिन तेल॥

जिसे भी वह मिला है, उसका पूरा खाना खराब करके ही मिला है। साधक पहले तो कभी कभी ऐसा शिकायत भरा स्वर भी बोलता है कि हे प्रभु! तू कैसा निर्दयी है?... लोग तो तुझे करूणासागर कहते हैं, लेकिन तुम्हारी करूणा तो कहीं दिखती नहीं! मैंने तेरे लिये घर बार छोड़ा, साथी रिश्तेदार सब छोड़े, धन-ऐश्वर्य सब छोड़ा, रात-रात भर तेरे लिये जागा, योग किया, प्राणायाम किया, जप-तप किया, ध्यान किया, मगर तुम मुझसे दूर ही दूर भाग रहे हो! तुम कैसे निष्ठुर हो?... मगर वह प्रियतम मिलता नहीं जब तक साधक में जरा सा भी 'मैं' पना शेष रहता है-तब तक वह नहीं मिलता। वह तो उसका सर्वस्व छीन लेता है।....'साधना'-यह कितनी कष्टपूर्ण यातना है!

मगर जब वह मिलता है....तो आनन्द की जैसे बाढ़ ही आ जाती है। उस बाढ़ के धक्के में साधक को ठहरना भी मुश्किल हो जाता है। सारा आनन्द का सागर ही उस पर उमड़ पड़ता है। साधक साधना के सारे दुःख-कष्ट भूल जाता है और अपने प्यारे प्रभु के लिये इतने अहोभाव से भर उठता है कि ओह प्रभु! मैं तो समझता था कि मैंने तुम्हारे लिये बहुत कष्ट उठाए हैं, अब लगता है कि तुम्हारी इस करूणा-कृपा को देखते हुए तो वह कुछ भी नहीं था! अब साधक सिद्ध होकर ऐसे आनन्द सागर में गोते लगाता है कि उसे अपने सुख के लिये संसार की ओर देखने की आवश्यकता ही नहीं रहती। उसके सारे कर्तव्य पूरे हो जाते हैं। उसे अब कुछ भी करना शेष नहीं रहता। आत्म-साक्षात्कार के बाद 'पूज्य श्री' ऐसी ही उन्मनी अवस्था में पड़े रहे। स्वामी रामतीर्थने उस स्थिति का ठीक ही शब्दों में वर्णन किया है:

लख चौरासी के चक्कर से थका, खोली कमर
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा?
जानना था वो ही जाना, काम क्या बाकी रहा?
लग गया पूरा निशाना, काम क्या बाकी रहा?
देह की प्रारब्ध से मिलता है सबको सब कुछ,
नाहक जग को रिझाना, काम क्या बाकी रहा?

डीसा (गुजरात) में अज्ञातवास

अब पूज्य श्री अपने सद्गुरुदेव के वात्सल्य एवं प्रेम

भरे आग्रह के वश हो डीसा पधारे और डीसा में बनासनदी के किनारे स्थित एक कुटीर में रहकर जीवनमुक्ति का आनन्द लेने लगे। कुटिया के आसपास सुन्दर एवं खुशबुदार पुष्पों से भरपूर एक बगीचा एवं सामने ही एक विशाल चौक टहलने के लिये था। इस रमणीय शांत एवं एकांत स्थान पर पूज्य श्री अज्ञात की तरह रहने लगे। लोगों का इस तरफ आना-जाना लगभग नहीं के बराबर था। हमेशा प्रातः एवं सायंकाल पूज्यश्री बनासनदी के किनारे एवं उसमें दूर दूर तक फैली शुभ्र बालुका में टहलने निकल पड़ते और ब्रह्मानन्द की मस्ती लूटते। कितनी ही अंधकारमय और चान्दनी भरी रातें इस प्रकार ईश्वर की अलौकिक मस्ती में यहाँ उनकी व्यतीत होती। समय का कोई भान नहीं रहता था। कभी-कभी १२ बजे और कभी उससे भी अधिक देर से कुटिया पर लौटते थे।

डीसा का वह श्मशान

डीसा आश्रम से नदी की ओर जाते समय रास्ते के बीच ही श्मशान भूमि पड़ती है। उस भूमि पर न जाने कितनों के प्रिय और लाड़लों के नश्वर शरीर अग्नि में स्वाहा होते नजर आते थे। कल तक जिस शरीर को सजाया संवारा था, जिस पर तेल-फुलेल लगाए थे, जिसकी छोटी मोटी आवश्यकताओं के पीछे कितनों ही से रागद्वेष और झगड़े कर के जीवन को अशांत बनाया था, उसी शरीर को उसी के प्रिय सम्बंधी अपने ही हाथों लकड़ी की चिता पर

रख कर आग लगा देते थे अथवा जमीन में गड्ढा खोद कर ऊपर से नमक मिट्टी और कांटे डालकर निर्दयता से गाड़ दिया करते थे। ऊपर से वीरान सा दिखता हुआ यह श्मशान आज तक न जाने ऐसे कितने अमीर-गरीब, बेचारे और प्रतिष्ठित, विद्वान और मूर्ख, बाप और बेटे, प्रेमी और प्रेमिका, छोटे और बड़े कहलाने वालों के कथा-प्रसंग अपने में समेटे हुए था। अतीत के अन्वेषकों का कहना है कि सारी पृथ्वी पर कोई भी जमीन ऐसी शेष नहीं बची है कि जिसके नीचे कमसे कम १० लाशें गढी हुई न हों।

सारी जमीन की बात छोड़ दें, केवल श्मशान भूमि को ही देखकर किसी को वैराग्य हो जाय तो समझो वह भाग्यशाली है। मगर ऐसा होता नहीं है। यहाँ तो कितने ही मुर्दों को अपने ही हाथों से फूंक कर आ जाने वाले बड़े-बड़े अनुभवी सज्जन भी यदि किसी को वैराग्य थोड़ा बहुत आ रहा हो, तो उसे भी यह समझाने जाते हैं कि 'भाई संसार में रचो पचो, इतना अधिक ईश्वर भजन नहीं करो-हमारी बात मानो, हमारे कोई धूप में बाल सफेद नहीं हुए हैं, पिछले ७०-८० साल का अनुभव है-और तुम तो अभी बच्चे हो-नादान हो!'....वाह रे मनुष्य का दुर्भाग्य!

अज्ञान से मोहित मनुष्य स्त्री-पुत्र-धन इत्यादि की चिंता में ही अपना सारा जीवन व्यतीत करता है और मरते समय भी उन्हीं की चिंता करते हुए मरता है। इस प्रकार फिर-फिर से अपनी वासना के अनुसार जन्म लेकर

चौरासी के चक्कर में भटकता रहता है । और लोगों में ऐसी मान्यता है कि कई अत्यधिक वासना वाले मनुष्य तो अपमृत्यु आदि के शिकार होकर श्मशान अथवा अन्य अपवित्र स्थानों में भूत बनकर भटका करते हैं । परन्तु जैसा कि एक सन्तने कहा है-वस्तुतः तो जिन की वासनाएँ पूरी नहीं हुई और उनकी पूर्ति के लिये भटकते रहते हैं, वे सब चलते फिरते जीवित भूत ही हैं ।

जिस रास्ते से पूज्य श्री नदी की ओर टहलने जाते थे, उस रास्ते में सांप-बिच्छु आदि अनेक जहरी जन्तुओं का भय रहता था, मगर वे उसी रास्ते से जाते थे और देर से रात्रि को अपनी कुटिया पर पहुँचते थे ।

जल बिच मीन पियासी

डीसा निवास के इन दिनों में पूज्य श्री लोगों से काफी अज्ञात् ही अपनी ब्रह्मानन्द की मस्ती में रहते थे । आज भी डीसा के कई पुराने भक्त कहते हैं कि 'हम पूज्य श्री के इतने नजदीक रहते थे, फिर भी हमें पता नहीं था कि भविष्य में लोगों के लिये इतनी प्रगाढ़ता से प्रगट होने वाला आनन्द का सागर, शीतल छाँव का वटवृक्ष हमारे इतना निकट है ! हम इतने दिनों तक पूज्य श्री को पहचान ही नहीं पाए थे और जब पूज्य श्री ने डीसा छोड़ दिया, तब हमें उनकी महानता का पता चला । मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी । और आज हम लोग यहाँ मोटेरा 'संत श्री आशाराम आश्रम' में पूज्यश्री के दर्शन करने आते हैं । हम

तो उस समय लाभ उनकी उपस्थिति का ले नहीं पाए, मगर यहाँ रहने वाले लोग धन्य हैं ।'

वस्तुतः मनुष्य का सद्भाग्य कितना नाजुक है और दुर्भाग्य कितना ठोस !

कितने इशारे-कितने संकेत, मगर आँख नहीं

वह परम पिता परमेश्वर तो न जाने कितने रूपों में कितनी बार हमको अपनी ओर बुलाने के इशारे दे चुका है और अभी भी देता रहता है, मगर हम उनको ठीक प्रकार से समझकर समय रहते नहीं चेतते, फिर पछताते रहते हैं । कितनी ही बार उसने हमें जगाया है । लेकिन हम एक बार भी जागते नहीं और करवट बदल कर सो जाते हैं । और जब समय निकल जाता है, तब परमात्मा को ही दोष देते हुए कहते हैं कि 'देखो, भगवान कितने निर्दयी हैं । संसार में इतना दुःख फैला हुआ है और वो क्षीर सागर में बस निश्चिंत लेटे हुए हैं !'

भगवान बुद्ध को एक ही बार जराजीर्ण वृद्ध, रुग्ण शरीर एवं एक मृत व्यक्ति की अर्थी देखकर ही वैराग्य हो गया था । दयानन्द सरस्वती शंकर भगवान की मूर्ति पर चूहे को चढ़ा देखकर ही वैराग्यवान होकर घर से भाग खड़े हुए थे । शिवाजी के गुरू समर्थ रामदास शादी के समय फेरे फिरते हुए भी पंडित का शब्द 'शुभ मंगल सावधान' सुनकर विवाह वेदी पर से वैराग्यवान् होकर भाग खड़े हुए थे ।

तो प्रभु का संकेत तो भिन्न भिन्न रूपों में हर समय चेतने के लिये मिलता ही रहता है, मगर हमारी मोह-निद्रा बहुत गहरी है-और गहरी होने से ही दोष अपने में न देखकर अपने दुःखों की सारी जिम्मेदारी परम कृपालु परमात्मा पर थोप देते हैं। जो भी हो डीसा के लोग उन दिनों पूज्यश्री को न पहचान पाने के कारण अधिक लाभ न ले पाए।

अज्ञातवास का भंग

उन दिनों भी पूज्य श्री रात्रि को चने और मूंग पानी में भीगनेके लिये रख देते थे और दूसरे दिन उन्हीं का भोजन करते थे। कई बार तो ब्रह्मानन्द की मस्ती में वे भी पानी में ही भीगे हुए पड़े रह जाते थे और इसी प्रकार भूखे ही कभी कभी निकल जाते थे। थोड़े दिन इसी प्रकार चलता रहा, परन्तु सूर्य कब तक बादलों के पीछे छुपा रह सकता है?

तप करे पाताल में, प्रकट होय आकाश,
दावी दूबी क्यों रहे, कस्तुरी सुवास॥

इस प्रकार पूज्य श्री लोगों की नजरों से अधिक समय तक पूर्णतः अज्ञात् नहीं रह सके। गुलाब की सुगंध जैसे चारों ओर फैल जाती है, चमकीली ज्योत से आकर्षित हो दीवाने पतंग पहुँच जाते हैं और शक्कर की डली पर बिना निमंत्रण के जैसे कीड़ियाँ पहुँच जाती हैं-वैसे ही पूज्य श्री के पास धीरे धीरे श्रद्धालु लोगों का समूह इकट्ठा होने लग

गया और उन्हें कुछ समय उनके लिये लोक कल्याणार्थ दर्शन और सत्संग के लिये निकालना ही पड़ा।

सच्चे संतों के जीवन में कई विचित्र घटनाएँ पग पग पर घटती ही रहती हैं। लोग उन्हें चमत्कार, तपस्या का फल आदि कई प्रकार के नाम दे दिया करते हैं। डीसा निवास के दरमियान पूज्य श्री के साथ भी जाने अनजाने ऐसी अनेक चामत्कारिक घटनाएँ घटती हुई लोगों को समय समय पर देखने में आती रही। उन सबका यहाँ वर्णन संभव नहीं। संत स्वयं कभी कुछ नहीं करते, परन्तु वे उस अमर, सर्वव्यापी, सबका चेतन 'आत्म-तत्त्व' के साथ इतने एक हो गए होते हैं कि प्रकृति उनके हर व्यवहार में अनुकूल होकर कार्य करती रहती है! प्रकृति क्योंकि पुरुष (आत्म-देव) की चेरी है, अतः पुरुष की सेवा करने को वह हर समय तत्पर है-बाध्य है।

मृत गाय को जीवन दान

एक दिन शाम के समय पूज्यश्री नदी पर से टहल कर आश्रम की ओर आ रहे थे तो उन्होंने देखा कि आश्रम के फाटक से थोड़ी दूर बहुत से लोगों की भीड़ लगी हुई है और उसके बीच एक गाय निर्जीव अवस्था में पड़ी है। पूछने पर लोगोंने बतलाया कि गाय मर गई है। पूज्यश्री ने एक नजर उस गाय के शव को देखा और एक व्यक्ति को अपने कम्मंडलु में से थोड़ा पानी देकर और यह कहकर कि मेरे जाने के बाद यह पानी गाय पर छिड़क देना-वे

अपनी कुटिया में चले गए और दरवाजा अन्दर से बंद कर दिया।

थोड़ी ही देर बाद जब उस व्यक्ति ने पूज्यश्री का दिया जल उस गाय पर छिड़का तो गाय एकाएक करवट बदल कर खड़ी हो गई और चल पड़ी। पूज्यश्रीने उस व्यक्ति को अपने बारे में कुछ भी बताने का मना कर रखा था, इसलिये जब लोगों ने उस व्यक्ति को घेर कर हकीकत पूछी तो वह बेचारा हिचकिचाते हुए इतना ही कह पाया कि-भाई, एक कोई बढ़ी हुए दाढ़ी और बालवाला बाबा आया था उसने यह पानी दिया था और अभी पता नहीं किधर चला गया है। इतना होते हुए भी वह बाबा कौन था-इस बात की खबर लोगों को पड़े बिना नहीं रही।

योग समान बल नहीं

अरे, यह तो क्या-ऐसे योगी एवं ज्ञानी महापुरूषों के अन्दर उस ईश्वरीय शक्ति का ऐसा प्रचण्ड़ भण्ड़ार भरा हुआ रहता है कि अपने संकल्प से वे समस्त ब्रह्माण्ड को डोलायमान कर सकते हैं। उनको अखण्ड़ ब्रह्माण्ड़नायक की संज्ञा क्या ऐसे ही दी गई है! ऐसे सदैव ईश्वर-रत अपने आपको मिटाए हुए शुद्ध हृदय संत महापुरूष-प्रश्न तो यह है कि वे अपने संकल्प बल से क्या नहीं कर सकते? उनके संकल्प में अपार बल होता है। सामान्यतः तो उनके हृदय में संकल्प उठते ही नहीं हैं, क्योंकि वे स्वयं तो मिटे ही हुए होते हैं-फिर लोक कल्याणार्थ कोई संकल्प उठ भी गया तो इस चराचर समस्त जगत में किसी की ताकत नहीं कि उसको

सफल होने से रोक सके। स्वामी विवेकानन्द ऐसे महापुरूष के बारे में कहते हैं-

"उस (योगी) के अन्दर भरी हुई अनन्त शक्ति के भण्ड़ार के दरवाजे खुल जाते हैं...जगत में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि जो उसके हाथ में न हो। वह यदि चाहें तो सूर्य और चन्द्र को गेंद की भांति उसकी कक्षा से विचलित करके घुमा सकता है। अणु से लेकर बड़े से बड़े सूर्य जैसे प्रचण्ड़ गोले तक जगत की समस्त वस्तुओं को अपनी इच्छानुसार चला सकता है। और इसमें कोई बड़ा आश्चर्य नहीं।...उसके संकल्प बल से मुर्दे जीवित हो सकते हैं, देवता और पितृलोकवासी जीवात्माएं उसके हुक्म मात्र से हाथ जोड़कर उसकी आज्ञा पालन के लिये उसके सम्मुख आ खड़े होते हैं। समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ उसकी दासी बन जाती हैं। प्रकृति की समस्त शक्तियों का वह स्वामी बन जाता है। उसकी योग सिद्धि का एकाध-उदाहरण जब संसार के सम्मुख आता है तो अज्ञानी लोग उसको चमत्कार कहते हैं।"

इन दिनों डीसा में जो भी भक्तगण आश्रम में आया करते थे उनमें भी जो तीव्र जिज्ञासु वृत्ति के थे, वे पूज्यश्री की नजरों से बच नहीं पाते थे। उनमें से कईयों को पूज्यश्री ने साधना मार्ग पर तीव्र गति से आगे बढ़ाया। ऐसा कई साधकों के अनुभवों से पता चलता है। उस समय पूज्यश्री की कृपा प्राप्त कर जो अपनी साधना में आगे बढे, उनमें से आज कई साधक बड़ी ऊँची भूमिका पर आरूढ हैं।

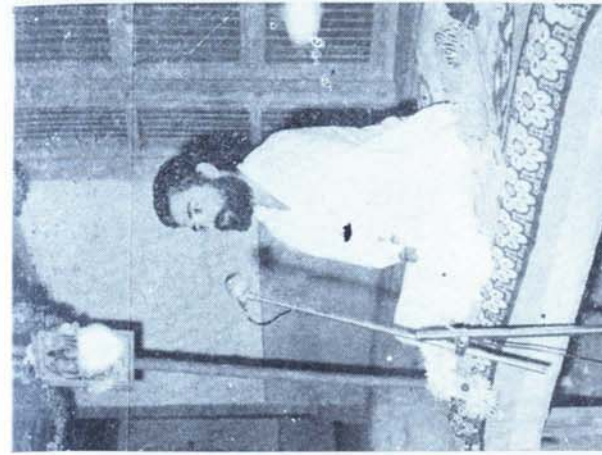
एक साधिका का अनुभव

एक बहन पूज्य श्री की प्रेरणा एवं निर्देशानुसार ध्यान किया करती थी। उसने एक दिन पूज्यश्री को अपना अनुभव बताते हुए कहा-

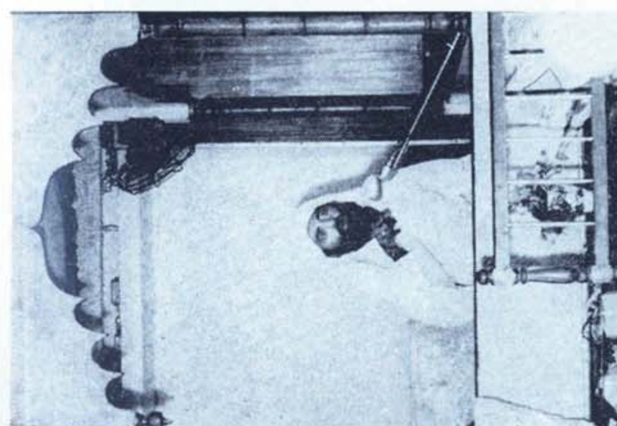
"एक बार मैं ध्यान में बैठी थी। अचानक एक देवदूत आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। अवश्य वह इन्द्रलोक से ही आया होगा, क्योंकि उसका बड़ा ही दैदीप्यमान शरीर था। मुझसे वह कहने लगा, 'चलो हमारे साथ। मैं तुमको लेने आया हूँ। मेरे साथ चलकर तुम स्वर्गलोक आदि की सैर करो।' मैं तो आश्चर्यचकित रह गई-यह सब दृश्य देखकर! फिर मुझे एकाएक पूज्य श्री का स्मरण हो आया और मैं सम्हल गई। फिर मेरा ध्यान टूट गया। गुरुदेव आपने मुझे बचा लिया अन्यथा मैं साधना-भ्रष्ट होकर पुनः माया के चक्कर में फंस जाती।"

इसी प्रकार टेकचन्द भाई करके एक डीसा के साधक हैं। वे बताते हैं—

मैं उन दिनों थोड़ा बहुत सत्संग आदि में जाया करता था तो स्वयं अपने आपको भी एक संत ही मानता था। फिर एक बार पूज्य श्री की माप निकालने के लिये उनके आश्रम जा पहुँचा। मन में ऐसा ही था कि कुछ तर्क-वितर्क करके उन साधु की बोलती बंद कर देंगे। मगर जब मैं वहाँ पहुँचा और थोड़ी देर बैठा तो उनसे तर्क-वितर्क



डीसा में अज्ञातवास के बाद लोगोंको लाभ देते हुए 'पूज्यश्री'



गुरुद्वारे में उपदेशामृत की वर्षा करते हुए 'पूज्यश्री'



श्री महंत डीसा चन्दीराम (पहले जो सेठ थे अब)
पूज्यश्री के श्री चरणों में



मुल्कगीरी में सिकंदर से
हजारों मर मिटे ।
अपने पर कब्जा न किया,
क्या किया, कुछ भी नहीं ।।

करने की सब तैयारी ही भूल गया । उनकी आँखों से ज्योंही मेरी आँखें मिली तो मैं चमत्कृत सा हो गया । अरे, जिनको मैं एक साधारण साधु समझ रहा था वे तो इस नवयुवावस्था में कोई छुपी हुई महान् आध्यात्मिक विभूति है ! फिर तो मैं हर समय पूज्यश्री की सेवा के बहाने वहाँ पहुँच जाता और बड़े प्रेम व मधुर वाणीभरा अमृतोपदेश उनसे सुन कर सारी थकान भूल जाता । पूज्य श्री की सामान्य सेवा से भी साधना में मुझे ऐसे ऐसे लाभ हुए कि जो अनेक वर्षों तक जंगलों में भटकने के बाद भी साधकों को दुर्लभ होते हैं ।

एक बार रात्रि को काफी देर तक मैं पूज्यश्री के सम्मुख बैठा सत्संग सुन रहा था । एकाएक पूज्य श्री ने कहा, 'इधर उधर क्या निहारना ? स्वयं ही सब कुछ बना बैठा है और दीन हीन अपने को मान रहा है । तेरी ही शक्ति से यह सारा चराचर जगत गतिशील हो रहा है । तुझे किसका भय ? जो कुछ है तुम्ही हो । तुम्हारे सिवाय कोई अन्य है ही नहीं । निर्भय रहो, जाओ ।'

उस रात को पूज्यश्री की दृष्टि एवं वाणी द्वारा जैसे अगाध शक्ति मेरे में प्रवेश कर गई थी । हर्षोल्लास से हृदय उछलने लगा । शरीर एकदम हल्का फूल सा लगने लगा और शरीर के रोम रोम में उस समय मैं इतनी प्रसन्नता अनुभव कर रहा था जितनी जीवन में आज तक नहीं की थी । मुझे वस्तुतः ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे यह समस्त

जगत मेरी ही आज्ञा में चल रहा है और मैं जो कहूँ वह टल नहीं सकता, होकर ही रहेगा। जैसे कोई शराब पीकर झूमता हुआ जाता है वैसी ही उस समय मेरी चाल थी। रास्ते में एक पागल सी औरत जो हमेशा उसी जगह बैठा करती थी–और यह बाद में मुझे पता लगा कि वह एक मस्त फकीर थी, वह मुझे देखकर भारी आवाज में बोली, 'क्यों बेSSS, आज तो संत के पास से खूब माल मार लाया हैSSS। तभी तो तेरे पैर ठीक से जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं।' मैं तो सुना अनसुना करके झूमता हुआ अपने घर की ओर चल पड़ा। वह मस्ती कई दिन तक रही।

उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि महापुरूष यदि चाहें तो अपनी दृष्टिमात्र से किसी को भी अपनी उस आत्म-मस्ती का स्वाद चखा सकते हैं, मगर यदि वह सत्पात्र नहीं हुआ तो वह उसे सम्हाल नहीं सकेगा।....और मेरे से भी ऐसी ही भूल हो गई। मैं कुछ बातों में पूज्य श्री की अवज्ञा कर गया। उन भूलों के कारण उस ब्रह्मानन्द की उधार मस्ती की झलक को टिका नहीं पाया और उसके कारण फिर बहुत भटकना पड़ा। घर बार छोड़ दिया! कई महीने हरिद्वार आदि कई स्थानों में भटकता रहा। बाल बढ़ गए। गुरु–आज्ञा की अवेहलना के प्रायश्चित्–स्वरूप रोते रोते आँखें सूज गई।

एक बार ऐसे ही एक साधु की कुटिया के बाहर बैठा बैठा मन ही मन गुरुदेव का स्मरण करते करते ध्यानस्थ

हो गया। थोड़ी ही देर बीती थी कि इतने में दो तीन लोग रोते हुए आकर मेरे सामने खड़े हो गए। एक की अंगुली को बिच्छु ने काट खाया था और वह असहनीय वेदना के कारण रो रहा था। मेरा ध्यान टूटा तो उसके हाथ की मुड़ी हुई अंगुली पर मेरी दृष्टि पड़ी। उन लोगों को यह आशा थी कि यह जो नया बाबा यहाँ आया हुआ है, वह जरूर बिच्छु डंक की वेदना मिटा सकता है। मुझे उसकी स्थिति पर दया आ गई और मैंने गुरुदेव का स्मरण करके उसकी अंगुली पकड़ कर सीधी कर दी। गुरुकृपा से अंगुली सीधी हो गई और उसकी बिच्छु डंक की सारी वेदना जाती रही।

पूज्य श्री की कृपा से इस प्रकार मेरे जीवन में कई चाम-त्कारिक अनुभव हुए हैं। आखिर मेरा यह तपस्यापूर्ण पश्चा-ताप करना सफल हुआ और पूज्य श्री ने अब मुझे फिर से करूणा करके अपना लिया है। घर–दुकान आदि की मेरी सारी बिगड़ी हुई परिस्थितियाँ फिर से सम्हल गई हैं। मगर यह मुझे अच्छी प्रकार अनुभव हो गया है किः

गुरू बिन भवनिधि तरहिं न कोई
चाहे विरंची (ब्रह्मा) शंकर सम होवहिं।

साधु तो बहुत से देखे, मगर

टेकचन्द भाई की तरह ही एक दूसरे साधक की पूज्य श्री के सांनिध्य से जीवन परिवर्तन की घटना भी उल्ले-खनीय है। ये सज्जन श्री चन्दीराम सेठ आश्रम में स्वामी

लीलाशाहजी महाराज कहाँ होंगे–यह जानने के लिये आए थे। इनकी एक के बाद एक दो शादियाँ हो चुकी थी, पर दोनों पत्नियाँ स्वर्गस्थ हो चुकी थी। अब ५५ वर्ष की ढलती उम्र में पैसे के प्रभाव से १८ वर्ष की एक नवयुवती से शादी करना चाहते थे। परन्तु ज्योंही कुटिया का दरवाजा खुला तो उनको पूज्यश्री के दर्शन हुए। योग एवं आत्म–मस्ती से झूमते हुए पूज्यश्री के विशाल नेत्रों की दृष्टि उन पर पड़ते ही उन पर जादू का सा असर हुआ और वे इतना ही मुंह से बोल पाए कि स्वामी लीलाशाहजी यहाँ पर हैं कि नहीं....और चुप हो गए।

पूज्यश्री की तीव्र दृष्टि जैसे एक्सरे की तरह उनके भीतर ही घुसती चली जा रही थी। वे उनकी ओर अधिक देर तक देख नहीं पाए। उन्होंने अपना सिर झुका लिया और पूज्यश्री के चरणों की ओर देखने लगे। मन में विचार उठा कि ओह! यह कैसा व्यक्ति है कि जिसकी ओर आँख से आँख नहीं मिला पा रहा हूँ। साधु तो बहुत से देखे, मगर साधु ऐसे भी होते हैं–यह तो कभी कल्पना भी नहीं की थी! आया तो था यह सोच कर कि स्वामीजी के दर्शन होंगे, आशीर्वाद मिलेगा, फिर शादी होगी और वह काम–सुख....नवयौवना के साथ.... उसका मजा...., मगर जैसे चलते–चलते यकायक सामने कोई शेर आकर खड़ा हो जाय तो व्यक्ति की क्या स्थिति हो जाय–वैसे ही सेठ चन्दीराम कुछ क्षण तो स्तब्ध हो

खड़े ही रह गए। उनकी विचारशृंखला टूट गई। काम विकार बिखरने लगा। जो व्यक्ति एक दिन भी बिना स्त्री के रह नहीं सकता था, स्त्री बीमार होकर हॉस्पीटल पहुँच जाय तो वहाँ भी वह अपना पास में बिस्तर लगवाकर रहे–इतना काम से अभिभूत मेरे जैसा व्यक्ति....और यह मुझे क्या हो रहा है? यह कैसा दिव्य पुरुष मेरे सामने खड़ा है, यह किस लोक का वासी होगा और एका एक दरवाजा खोलते ही कैसे इस का सामना हो गया है... यह सब मनोमन मन्थन चल ही रहा था कि पूज्य श्री की गंभीर आवाज कानों में सुनाई पड़ीः

"अब क्या लौकिक शादी करेगा! मैं तुम्हारी शादी कराऊँगा–जीवात्मा और परमात्मा की।"

बस, फिर सेठ चन्दीराम घर गए और अपना नवीन निर्णय सब भाइयों एवं सम्बंधियों को सुना दिया कि अब मैं शादी नहीं करूँगा। सुनकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतना खर्चा किया लड़की को ढूंढने में, दलालों को पैसा दिया, इतनी तैयारियाँ की और इतना समझदार होते हुए इस को ये एकाएक क्या हुआ–यह सोचकर उनके सब भाई बड़े चिंतित हुए। उन्होंने उसे इस बात पर राजी किया कि एक बार वह लड़की के साथ एक कमरे में कुछ देर बैठें और कुछ खुलकर जो भी हो बातचीत करें।

ऐसा भी किया गया। एक कमरे में चन्दीराम अकेले उस लड़की के साथ रहे....अकेले ही! दूसरा वहाँ कोई

नहीं था । कहते हैं, घंटे भर तक उन्होंने उसकी देह से स्पर्श आदि करके भी अपना पुराना काम विकार जगाने की पूरी चेष्टा की, मगर विकार उठा ही नहीं । यह सब हुआ कैसे ?....क्या संत महापुरुषों का आशीर्वाद इतना अधिक शक्तिशाली भी हो सकता है कि काम विकार तक को भी... वह महाविकार जिसने बड़े बड़े तपस्वियों तक को भी धराशायी कर दिया–उस काम विकार की भी उस के आगे एक नहीं चलती ! मगर यह कोई स्वप्न तो है नहीं प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है ! आह !....धन्य हैं उन योगी पुरुष को जिन्होंने मुझको डूबते डूबते बचा लिया । सेठ चन्दीराम ने बाद में बताया कि मैंने उन योगी पुरुष को मन ही मन प्रणाम किया और उसी समय यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब तक तो मेरा जीवन व्यर्थ गया, मगर अब बचा खुचा जीवन उनके चरणों में समर्पित कर दूँगा, ताकि वे मेरी जीवन नैया को पार लगा दें ।

फिर तो जैसा होना था वही हुआ । उनके निर्णय के आगे किसी भी भाई की नहीं चली । लड़की को उन्होने ५०० रुपये सामान्य खर्च आदि के लिये दिये, उसे अपनी पुत्री के बराबर कहा और अपने घर भेज दिया । स्वयं पूज्यश्री के चरणों में आकर गद्‌गद्‌ कंठ से निवेदन किया कि किसी भी प्रकार मेरा उद्धार करो ।...फिर एक दिन वे घर से भाग खड़े हुए । ...अभी वे पूज्य श्री के सांनिध्य में ही रहकर साधना कर रहे हैं । उन के घर की परिस्थितियाँ

भी अब ठीक हो गई हैं और घर एवं दुकान का सब कार्य सुचारू रूप से चल रहा है । अभी वही चन्दीराम सेठ 'महंत डीसा चन्दीराम' नाम से प्रसिद्ध है ।

पूज्य श्री के दर्शन करने कपड़े के एक दुकानदार शंकरभाई की माताजी आश्रम आया करती थी । शंकरभाई बड़े ही हठी और क्रोधी स्वभाव के थे । वे कभी किसी साधु संत के पास नहीं जाते थे । उनकी माताजी ने उनसे कई बार कहा कि तुम भी एक बार उनके दर्शन करने चलो । मगर वे नहीं माने । एक दिन उसकी माने कहा कि 'बेटा, वे महाराज योग–आसन आदि भी जानते हैं, और कुछ नहीं तो ये तो उनसे सीख ले !' बस, योगासन में तो उनकी बहुत रुचि थी ही । एक दिन वे गये । वहाँ जाकर वे ऐसे आकृष्ट हुए कि योगासन तो उन्होंने सीखे ही, पूज्य श्री की कृपा से उनका ध्यान भी लगने लगा । उनकी कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो गई । उनको अपना जीवन सफल करने की दुर्लभ राह मिल गई । अब तो उनको ऐसी लगन लगी साधना करने की कि माँ उन्हें जाने की मना करने लगी तो भी वे रुके नहीं । अभी भी वे अपनी दुकान चलाते हुए भी पूज्य श्री के चरणों में अधिकांश समय साधना में व्यतीत करते हैं ।

मेरे मन को पढ़ लिया

अभी जो पूज्य श्री के सांनिध्य में साधक साधना कर रहे हैं, उनमें एक साधक शिवलाल भाई भी हैं । उनकी

डीसा में उस समय होटल था। वे बताते हैं कि मेरे को कई बार लोगों ने कहा कि आप भी चलो पूज्य श्री के दर्शन करने, परन्तु मैंने कभी विशेष ध्यान नहीं दिया। आखिर एक दिन मैं चल पड़ा। मैंने यह भी सुन रखा था कि यह बाबा कई कई दिन कुटिया में ही बन्द भी रहते हैं। तो ये खाते क्या होंगे उन दिनों में? इस प्रकार का विचार करते हुए मैं अपने साथी के साथ आश्रम पहुँच गया। पूज्य श्री उस समय कुछ भक्तों को सत्संग सुना रहे थे। जब हमारे ऊपर उनकी नजर पड़ी तो वे एकाएक बोलेः

"कुछ लोग ऐसा भी मन में सोचते रहते हैं कि यह बाबा जब कुटिया में अकेले ही बन्द पड़े रहते हैं, उन दिनों इनको कौन खाना खिलाता होगा? क्या ये भूखे ही पड़े रहते होंगे? तो भाई...."

ऐसा कहकर पूज्य श्री कुटिया में जाकर एक डब्बा उठालाए और खोलकर दिखाने-लगे। उसमें किलो आधा किलो आटा था और वह भी लोग कह रहे थे कि कई दिन से यों का यों पड़ा हुआ है। जो भी हो, ये बाबा अवश्य ही अन्य सामान्य बाबाओं से विशेष हैं; क्योंकि मेरे मन के विचारों को उसी समय उन्होंने भाँप लिया था।

उसके बाद तो मैंने असंख्य चमत्कार पग पग पर देखे हैं। और अब तो पूज्य श्री की अनन्त कृपा है जो उन्होंने मुझे यहाँ चरणों में जगह दे रखी है।

नारायण हरि

डीसा में अधिक लोग पूज्यश्री को जब नहीं जानते थे उस समय पूज्य श्री कभी कभी मधुकरी (भिक्षाटन) के लिये जाया करते थे। अपना कम्मंडलु लेकर वे किसी भी घर के सामने जाकर खड़े हो जाते और 'नारायण हरि' कहते। उस समय कई प्रकार के खट्टे-मीठे अनुभव उन्हें होते थे। कोई कोई तो उन्हें सुना भी दिया करते थे।

एक बार वे एक घर के सामने मधुकरी के लिये जाकर खड़े हुए तो एक माताजी ने घर में से बाहर आकर उन्हें देखा। पूज्यश्री की शरीर यष्टि बडी सुदृढ थी और फिर युवा अवस्था! बस, उससे फिर तो रहा नहीं गया और सिंधी भाषा में बोल पडी किः

"इतना मोटा-ताजा, हट्टा-कट्टा है, फिर भी देखो ...कमण्डल लेकर आगए.......माफ करो, चलो-चलो....।"

वह बेचारी क्या जाने कि यह बाबा भी सिंधी भाषा जानते हैं। क्यों कि शरीर से तो वे सिंधी थे ही। सारे ब्राह्माण्ड को हिला देने का सामर्थ्य रखने वाले महापुरुष ने जब ये शब्द सुने तो अन्दर मन ही मन बोल उठे-"लो आशाराम, अब चखो मजा! यह माई भी तेरा ही स्वरूप है! बोलो, मजा आया कि नहीं-अपने ही मुख से अपनी ही निन्दा सुनने का?" और वहाँ से आगे चल पड़े।

कहते हैं तत्त्व ज्ञानी महापुरुष किसी के पास से भी

गुजर जाय, मगर पहचानने की आँख न हों तो व्यर्थ। तो जब तक उन्हें कोई नहीं जानता था, तब तक वे इस प्रकार चुपचाप कहीं से अपमान तो कहीं से स्तुति सुनकर मजा लेते रहे। मगर प्रभु का प्यारा कहाँ भूखा रह सकता है? कोई एक ऐसा विशेष आकर्षण या कहो 'आध्यात्मिक-ओज' पूज्यश्री के व्यवहार एवं हाव भाव में रहता था कि लोग बाद में उन्हें भिक्षा देने के लिये आतुर रहने लगे। खीर, पूडियाँ और अन्य पकवान बना बनाकर लोग पूज्यश्री का रास्ता देखने लगे कि कब वह बाबा आवें और उसे हम अपने हाथों से भिक्षा देवें, मगर पूज्यश्री अपना रास्ता ही बदल देते और किसी नये मकान के सम्मुख पहुँच जाते।

एक मजदूर पर करुण कृपा

संतों का हृदय बड़ा ही दयालु होता है। यही कारण है कि जाने-अनजाने कोई भी पूज्यश्री के सम्पर्क में आया, वह लाभान्वित ही हुआ। एक बार पूज्यश्री नदी पार कर रहे थे। नदी में घुटने तक पानी बह रहा था। उस समय एक पाँव से लंगड़ाता हुआ एक देहाती नदी के पास आकर खड़ा हो गया। पूज्यश्री समझ गए कि यह नदी पार करना चाहता है, मगर लंगडा होने से अपने को असमर्थ पाकर मन ही मन चिंता करने लगा है। पूज्यश्री ने कहा :

"आओ, मैं तुम्हें अपनी पीठ या कंधे पर बिठाकर उस पार छोड़ देता हूँ।"

वह थोड़ा हिचकिचाया तो सही, मगर दूसरा कोई चारा भी नहीं था। पूज्यश्री ने उसे अपने ऊपर चढ़ा लिया और नदी पार करने लगे। बीच रास्ते में उन्होंने देखा कि उसकी आँखों से आँसू बहने लगे हैं, तो उन्होंने पूछा:

"अरे रोता क्यों है?"

वह बोला:

'बापू! मैं जहाँ ठेकेदार के पास मजूरी करता हूँ, उसने वहाँ से आज मुझे छुट्टी दे कर कहा है कि तुम्हारे अब काम पर आने की जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम्हारे पांव के लग गई है और तुम यह पत्थर उठाने का काम नहीं कर सकोगे!... बापू, अब मेरे घर का गुजारा कैसे चलेगा-यही चिंता है?"

पूज्य श्री का हृदय उसकी असहायता को देखकर द्रवित हो उठा। अरे, यह शरीर से भी असहाय और घर की आर्थिक दृष्टि से भी असहाय! और इसके कारण इसका परिवार भी भूखा मरेगा!...फिर, यह किसी संत के कंधे पर एक बार चढ़ चुका, इसका अकल्याण कैसे हो सकता है!

पूज्यश्री ने कहा:

"भाई, तुम कल भी काम पर जाना। और मजदूर की तरह दरिद्र भाव से नहीं, ठाट से जाना, जैसे कि मजदूरों के ऊपर कोई जमादार हो।... समझे कि नहीं?"

वह बोला:

"लेकिन बापू! उसने तो काम पर आने से बिलकुल ही मना कर दिया है।"

अब पूज्यश्री ने जरा जोरदार शब्दों में कहा:

"अरे, मैं कहता हूँ वैसा करेगा कि ठेकेदार कहता है वैसा करेगा? डरता क्यों है? तुम रौब से जाना। समझे कि नहीं?"

वह देहाती अब जरा चौंका कि सामान्यसा दिखने वाला यह बाबा कोई ऐसा-वैसा नहीं है। यह जो कहता है, उसमें अवश्य राज होगा। अब उसे विश्वास हो गया कि बाबा का आशीर्वाद मिला है तो जरूर मेरा हित होगा ही।

और हुआ भी ऐसा ही! दूसरे ही दिन शाम को बड़े ही उत्साह से आकर उसने पूज्यश्री के चरण पकड़े और कहा:

"बापू, आपने मुझे बचा लिया। आज मैं जब काम पर गया तो ठेकेदार ने एकाएक मुझे बुलाकर कहा कि 'अरे, तू आ गया! बड़ा अच्छा किया। देखो, तुम्हारा पांव लंगड़ाता है तो तुम मजदूरों की हाजरी भरने आदि का काम बैठे बैठे किया करो।...' और बापू उसने मेरी मजदूरी भी बढ़ा दी है।"

शाहों के शाह-'पूज्यश्री'

इस प्रकार इन दिनों पूज्यश्री के सम्पर्क में आकर न जाने कितने लाग लाभान्वित हुए होंगे, फिर भी पूज्य श्री अपनी फकीरी मस्ती में ही रहते थे। उनके समीप आकर

कईयों की चाहें पूरी होती थी, मगर वे स्वयं 'चाह रहित' ही थे। संसार के लोग ऊपर से अमीर दिखते हैं, मगर अन्दर से चाह होने के कारण दरिद्री होते हैं जबकी ऐसे संत ऊपर से निर्धन से दिखते हुए भी अन्दर से शाहों के शाह होते हैं, क्योंकि उनकी सारी वासनाएँ जल चुकी होती हैं।

चाह गई चिंता गई और मनवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिये वो शाहन के शाह॥

ऐसे शहंशाहों के लिये किसी मस्त फकीर ने गाया है:

वाह फकीरी, कौन अमीरी, दासी तेरे चरणों में।
राजा रंक जमींदार सब, चाकर तेरी नजरों में॥

मगर कितने ऐसे लोग हैं जो ऐसे फक्कड़ संतों को पहचान पाते हैं! उनको भी अपनी ही तरह खाते पीते रहते सोते और लोगों में व्यवहार करते हुए पाकर कई नासमझ उन्हें अपने जैसा ही मान बैठते हैं और जो पारमार्थिक लाभ उनसे लेने के अवसर आते हैं, उनसे हाथ धो बैठते हैं।

अजीब थी वह अलमस्ती

एक बार सत्संग पूरा होते होते पूज्यश्री ने अपने सरल हृदय से लोगों से पूछा:

"क्यों भाई! संत भी जैसे सब संसारी लोग होते हैं,

वैसे ही होते हैं न ? वे भी खाते हैं, पीते हैं, सोते-उठते-बैठते हैं। उनमें और अन्य लोगों में कोई फर्क होता है क्या ?"

कुछ लोग पूज्य श्री के कहने का भाव नहीं समझे। जो समझ गए, वे तो हाथ जोड़े मूक से बने रहे कि बापू ऐसे ही लीला कर रहे हैं। कहाँ हम संसारी लोग विषय वासनाओं के पुतले और कहाँ ऐसे निस्पृही-निर्लेप, लोकहितार्थ ही जिनकी हर प्रवृत्ति होती है-ऐसे संत महापुरुष ! मगर एक व्यक्ति बोल उठा:

"हाँ, क्या फर्क है ?....कुछ नहीं।"

पूज्य श्री उसके उत्तर से जरा चौंक उठे और पुनः पूछा:-

"कोई फर्क नहीं न ?"

वह बोला:

"ना, कोई फर्क नहीं।"

बस, फिर क्या था ? संत लोग अपनी ईश्वरी मस्ती को, अपने एकांत के आनन्द को भी छोड़कर जिन लोगों के लिये सिर खपाते हैं, वे ही लोग इतनी भी संतों की कद्र नहीं जानते ! रात दिन जो अपनी तुच्छ वासनाओं के ही पीछे लगे रहकर अपने मोह और राग-द्वेषपूर्ण व्यवहार से ऊपर ऊठकर प्रवृत्ति नहीं करते, फिर भी अपने को संतों के समान समझ लेते हैं और संतों के दुर्लभ अनुभवमय उपदेश की इच्छा नहीं करते-ऐसे लोगों के लिये संत अपनी निजानन्द की भूमिका को छोड़कर सिर खपाते हैं !....लोक

कल्याण के लिये संसार की कीचड़ में केवल करूणावश उतरते हुए पूज्य श्री ने एकाएक जैसे अपने को रोक लिया। उन्होंने अपने शरीर पर के ओढे हुए वस्त्र उतार फेंके और केवल एक चड्डी पहने हुए नंगे बदन अवधूती मस्ती में आकर कुटिया से बाहर चल पड़े।

अब सब लोगों को भान हुआ कि पूज्य श्री जा रहे हैं और उन्हें रोका नहीं गया तो जो सत्संग का रंग यहाँ जमता है और उस अलख के आनन्द की झलक जो थोड़ी बहुत हमें मिलती है उससे हमेशा के लिये वंचित रह जाएंगे, क्योंकि न जाने पूज्य श्री कब वापस लौटेंगे-या नहीं भी लौटें। इसलिये सबने मिलकर पूज्य श्री को रुक जाने के लिये खूब विनती की, मगर फकीरों को कौन रोक सकता है ? वे तो अपनी मर्जी के मालिक होते हैं। बस, चल पड़े तो चल पड़े। लोगों द्वारा खूब मिन्नतें करने के बाद भी पूज्यश्री रुके नहीं, चल पड़े-यह बताए बिना कि कहाँ जा रहे हैं, वापस लौटेंगे या नहीं लौटेंगे या आश्रम का पीछे से ख्याल रखना.... ! कुछ भी नहीं बताया।

आखिर पन्द्रह दिन पश्चात् पूज्यश्री 'मोटी कोरल' हैं ऐसे समाचार मिले। अजब है जीवनमुक्त महात्माओं की अलमस्ती ! वस्तुतः त्रिगुणमयी माया को पार कर जाने वाले ऐसे तत्त्वज्ञ महात्माओं की उपस्थिति मात्र से मानव मात्र को आत्मिक शांति का लाभ प्राप्त होता है, मगर उनकी महिमा से अनभिज्ञ यह जनसाधारण वर्ग कई बार उनको अपने ही

बीच अपने ही जैसा व्यवहार करते हुए देखकर उनको भी अपने ही जैसा मान लेता है और उनसे मिलने वाले पारमार्थिक लाभ से वंचित रह जाता है ।

अवधूती मस्ती

एक बार इसी प्रकार अपनी अवधूती मस्ती में पूज्यश्री नर्मदा किनारे स्थित नारेश्वर धाम के पास के घने जंगल में जा पहुँचे। संध्या को जब भगवान भास्कर अस्ताचल की ओर जाने लगे तो साथ में आए हुए दो भक्तों को भी वापस अपने घर की ओर रवाना कर दिया। अपने साथ भोजन का कुछ भी सामान नहीं लिया और मीलों दूर उस घन-घोर जंगल में पहुँच कर एक बड़े वृक्ष के नीचे बैठकर अपने प्यारे प्रभु के ध्यान में मग्न हो गए।

सारी रात इसी प्रकार बीत गई। भगवान भास्कर रात भर अपनी थकान मिटाकर पुनः यात्रा के लिये प्रातःकाल पूर्व में धीरे धीरे अपना मस्तक बाहर निकालने की तैयारी करने लगे। पूज्यश्री ने रात को भी कुछ खाया नहीं था, परन्तु मन ही मन उनका यह निर्णय था कि जिसके लिये मैं यहाँ बैठा हूँ, उसको गरज होगी तो अपने आप यहाँ भोजन पहुँचाएगा।

पूज्यश्री हमेशा की तरह प्रातर्विधि से निवृत्त हो आसन करने लगे। इतने में तो उन्होंने देखा कि माथे पर बड़ी बड़ी पगड़ी (साफा) बांधे किसी गाँव के दो कृषक भाई हाथ



हूँ मस्त मैं अपनी महिमा में, है कुछ भी गैर अज राम नहीं।
सब कल्पित धूम मचाते हैं, हिप हिप हुर्रे, हिप हिप हुर्रे॥



'नर्मदे......हर' नर्मदा-स्नान करते हुए पूज्यश्री



श्लोक कण्ठस्थ प्रतियोगिता में अग्रिम आए विद्यार्थियों को पुरस्कार वितरण करते हुए पूज्यश्री

में कुछ खाने का सामान और पीने के लिये कुछ पेय पदार्थ से भरा कम्मण्डलु लेकर उन्हीं की ओर कदम बढ़ाए चले आ रहे हैं। पास में आकर पूज्य श्री के चरणों में उन्होंने भोजन-सामग्री रखी और प्रणाम करके बोलेः

"स्वीकार करो महाराजजी !"

यहाँ से मीलों दूर तक कोई गांव दिखाई नहीं पड़ता था। ऐसे घोर जंगल में प्रातः इतना जल्दी बिना पहचान के अनजान जगह में दो व्यक्तियों को आया देखकर पूज्यश्री ने उनसे कहाः

"भाई, तुम लोग रास्ता भूल गए लगते हो। यहाँ कोई दूसरे महाराजजी रहते होंगे, जिनके लिये तुम लोग यह सब लेकर आए होंगे। उनको खोजो और यह सामान उनको पहुँचाओ।"

परन्तु वे बोले-"नहीं नहीं बापू, यह सब हम आप के लिये ही लाए हैं।"

पूज्यश्री ने पूछा-"हमारी तो कोई जान पहचान भी नहीं, फिर आप कैसे ले आए ?"

अब उन्होंने सारी हकीकत बताते हुए कहाः

"रात को बापू हमने सपने में आपको यहाँ जंगल में बैठे हुए देखा था। इसी स्थान पर पहुँचने का रास्ता आदि भी हमें सपने में ही दिखाई दिया और ऐसी प्रेरणा हुई कि हमें आपश्री की सेवा के लिये यहाँ प्रातः जल्दी ही

पहुँच जाना चाहिये । इसलिये हम यहाँ आ पहुँचे हैं । हमारा गांव जरा दूर है । आप फल दूध आदि लीजिये । हम अभी वापस घर जाते हैं और कुछ समय बाद आपके लिये भोजन आदि लेकर आएंगे । फिर आप भी हमारे गांव पधारना । हमारे गांवमें कोई संत नहीं है । आप वहाँ पधारेंगे तो आपके चरणों से हमारा गांव भी पावन हो जायेगा और आप के अमृतोपदेश से हम सब का भी कल्याण होगा ।"

ऐसी नम्र विनती करके वे अपने गाँव की ओर लौट पड़े।

पूज्यश्री ने आसन आदि करके थोड़ा अल्पाहार किया, फिर वहीं जमीन पर 'जोगी तो रमता भला' लिखकर वहाँ से भी चल पड़े ।

सचमुच, जो सच्चे हृदय से ईश्वर की भक्ति करता है, ईश्वर उसकी सब प्रकार की चिंता करने को हर समय तत्पर रहता है । शुरूआत में थोड़ी परीक्षा अवश्य होती है । परंतु कसौटी हमेशा सोने की ही होती है, लोहे की नहीं । इसीलिये कहा गया हैः

रने वने आपत्ति में वृथा डरे जन कोय ।
जो रक्षक जननी जठर, सो हरि गए न सोय ॥

हिमालय की गोद में

पूज्यश्री गर्मी के दिनों में हिमालय की तरफ नैनीताल, गंगोत्री, उत्तरकाशी आदि पधार जाया करते और अपने

प. पू० सद्गुरुदेव के पवित्र सांनिध्य में कुछ दिन बिताया करते थे । उनके सद्गुरुदेव उनको बड़े ही प्रेम और मान भरी दृष्टि से देखा करते थे और उनको प्रेमाधिक्य के कारण 'महंतजी महाराज' कह कर बुलाया करते । पूज्यश्री को देखते ही वे समीप खड़े भक्तों को कहते 'हट जाओ भाई....देखो महन्तजी महाराज पधार रहे हैं ।' कभी किसी भक्त के यहाँ से भोजन का निमंत्रण होता तो वे भक्त को कहते-"भाई, हम कैसे चल सकते हैं ? वो देखो, उधर महन्तजी महाराज हैं, उनको कहो । वे चलेंगे तो हम भी चलेंगे ।" यह सुनकर भक्त 'पूज्यश्री' के पास आता और निमंत्रण की बात कहता तो 'पूज्यश्री' समझ जाते कि सद्-गुरुदेव ने ही यह सब विनोद रचा है । 'पूज्यश्री' को इस प्रकार कई प्रसंगों में अपने गुरुदेव की अपने ऊपर अपार कृपा के दर्शन होते रहते थे ।

एक बार पूज्यश्री अकेले ही श्री रामतीर्थ की पवित्र साधना भूमि गंगोत्री पहुँच गए । उस पावन धरती पर अभी भी प्राचीन ऋषि महर्षियों के आध्यात्मिक परमाणु जीवंत हैं-ऐसा उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव वहाँ पहुँचते ही हुआ । ऋषिकेश से टिहरी (उत्तर काशी) होते हुए लंका नामक स्थान तक बस जाती है । बीच में बस ऐसे ऐसे भयंकर स्थानों से गुजरती है कि किस क्षण गंगामैया की गहरी खाईयों में गिर पड़े-कहा नहीं जा सकता । कच्चा पहाड़ी और संकड़ा रास्ता, चारों ओर हिमाच्छादित खेत, दूध जैसे

धवल शिखर, आकाश को छूते हुए देवदार के मनमोहक सुंगधीदार असंख्य लम्बे वृक्ष, सामने राक्षसी पहाड़ों पर हरे हरे खेतर और नीचे देखो तो गहरी खाईयाँ–बड़ा ही विचित्र और मनमोहक दृश्य है वहाँ का ! छोटे मोटे असंख्य झरने और नागिन के समान बल खाती नीचे की ओर बहती हुई जाह्नवी (गंगा) का वह पावन दृश्य अलौकिक प्राकृतिक सौंदर्य का सर्जन करते हैं ।

लंका से करीब आठ किलोमीटर तक पैदल ही चलना पड़ता है । शुरूआत में तीन किलोमीटर का भयंकर संकड़ा और बहुत चढ़ाई वाला भैरव–घाटी नाम का रास्ता पार करना पड़ता है । उसमें सामान तो क्या स्वयं का शरीर लेकर चढ़ना भी मुश्किल पड़ता है । ऐसे विकट रास्ते को भी पूज्यश्री अपना सब सामान साथ लिये हुए ब्रह्मानन्द की मस्ती में पार कर गए ।

यहाँ बहुत सम्हल–सम्हल कर कदम रखने पड़ते हैं । कहीं–कहीं तो जीवन और मौत के बीच कुछ इंचों का ही फासला रह जाता है । जरा सा भी यदि चूके तो गंगा की अमाप गहरी खाई अपना विकराल मुंह फाड़े स्वागत के लिये हर समय तैयार रहती है, जिस में गए तो फिर वापस लौटने की आशा रखना ही व्यर्थ है। फिर तो उस यात्री की कफन–विधि और अग्नि-संस्कार नीचे ही हो जाते हैं । जहाँ पग-पग पर मृत्यु मुंह बांए खड़ी हो, वहाँ भी शीतल सुगंध समीर के झौंके मन को आह्लादित करते रहते

हैं । संसार के कोलाहल और आडम्बरों से दूर इस एकांत पवित्र क्षोभ–रहित शांत स्थल में गंगा के प्रवाह की वह अनाहत ध्वनि....आह, किसका मन मोह न ले ! धन्य है इस पवित्र, शांत और एकांत तीर्थस्थलको जिसका सेवन कर ऋषि-महर्षियोंने मानव–मन को आत्म–शांति के उपदेश दिये और उनको सही रास्ते आगे बढ़ाया !

पूज्यश्री गंगोत्री में थोड़ा समय 'योग निकेतन' नामक आश्रम की एक साधना कुटीर में भी ठहरे थे । वहाँ से करीब १२–१३ किलोमीटर दूर स्थित 'गौमुख' जहाँ से कि गंगाजी का मूल प्रवाह प्रारंभ होता है–वे गए । अत्यधिक ठंड़ और बर्फसे ढंके हुए चढाई वाले रास्ते पर से फिसल जाने का पूरा भय होते हुए भी पूज्य श्री वहाँ अकेले ही गए थे । वहाँ से निकलता हुआ गंगाजी का तीन चार फुट व्यास का वर्तुलाकार बिल्कुल प्रांरभिक प्रवाह....आह ! उस दृश्य को शब्दों में बांधना बड़ा कठिन है । आगे नीचे जाकर कई अन्य झरनों को अपने में समेट कर गंगाजी अपना विशाल रूप धारण करती हैं । इस स्थान पर पूज्य श्री को कई यौगिक अनुभूतियाँ हुई ।

मुर्दे से मुलाकात

गंगोत्री में एक ज्ञाननिष्ठा में उन्मत्त संत रहते थे । कोई भी उनका दर्शन करने जाता तो वे दरवाजा नहीं खोलते थे और अन्दर से ही अपनी फक्कड़ भाषा में कुछ जवाब देकर उसे विदा कर देते थे। किसी–किसी को तो

दो-चार गालियाँ भी सुना देते और वहाँ से भगा देते। संतों की चाल निराली होती है जो एरहक की समझ में नहीं आती।

आसपास के कुछ लोगों ने उन संत के क्रोधी स्वभाव आदि की बात पूज्यश्री से भी की, मगर पूज्यश्री तो किसी भी बात की परवाह किये बिना उन संत की कुटीर के दरवाजे पर जा खड़े हुए। हमेशा की तरह अन्दर से ही वे संत जोर से बोले-

"कौन है....जिन्दा है कि मुर्दा है ?"

पूज्यश्री ने शांत और गंभीर स्वर में कहा-

"मुर्दों के पास मुर्दे ही आया करते हैं।"

यह जवाब सुनकर वे संत चौंक उठे और तुरंत उठ कर दरवाजा खोला। फिर पूज्य श्री को आदर सहित अन्दर ले जाकर बिठाया और बड़ी आत्मीयतापूर्वक कहा-

"यहाँ तो सब जिन्दे ही आते हैं। आज एक तुम्ही मुर्दे आए हो। आज मुर्दों की महफिल होगी।"

फिर कई प्रकार की साधना आदि के बारे में बातें हुई। उसके बाद कई बार पूज्यश्री और उन संत की मुलाकातें होती रही। (यहाँ मुर्दे का अर्थ है-जिसका देहध्यास मिट गया है। जो शरीर होते हुए भी अशरीरी है।....और जो अपने को शरीर मानता है-आत्म तत्त्व में जिसकी स्थिति नहीं और अज्ञानी है-वह जीवित है ऐसा उनका भावार्थ था)

इस प्रकार ब्रह्मानन्द की मस्ती लेते हुए हिमालय में उत्तरकाशी, बद्रीनारायण, केदारनाथ, देहरादून से आगे के एकांत अरण्यों में और दूसरे अनेक स्थानों में पूज्यश्रीने भ्रमण किया।

अर्बुदागिरि (आबू) की प्राचीन नलगुफा में

डीसा निवास के दिनों में कई बार पूज्य श्री आबूराज (माउन्ट आबू) की पवित्र नल गुफा में पहुँच जाते और वहाँ अकेले ब्रह्मानन्द की मस्ती में डूबे रहते। इन दिनों में भी पूज्यश्री गर्मियों में एकबार आबू अवश्य पधारते हैं।

प्राचीन समय में आबू की नलगुफा में नल राजाने तपस्या की थी और उसके बाद भी अनेक सिद्ध कोटि के महापुरुषोंने इस गुफा में अपना तपस्या-पूर्ण जीवन व्यतीत किया है। अभी भी प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त इस पवित्र नलगुफा एवं उस के आसपास के वातावरण में प्राचीन महर्षियों के साधनामय शांत एवं पावन परमाणु जीवित हैं -ऐसा वहाँ जाने पर हर साधक को सहज ही अनुभव होने लगता है।

संतों के पावन चरण जिस भूखण्ड पर पड़ जाते हैं वह भूखण्ड पवित्र एवं धन्य बन जाता है और जिस भूमिखण्ड पर वर्षों ऋषि-महर्षियों ने तपस्या की हो, वह तो स्वाभाविक रूप से तीर्थस्थल बन ही जाता है। पूज्यश्री के सांनिध्य में आने वाले कई धन्यभाग साधकों ने इस

नलगुफा का दर्शन-लाभ लिया है एवं कुछ दिन वहाँ रहकर एकान्त साधना भी की है ।

नलगुफा-एक अद्भुत योग-स्थल

नल गुफा की प्राकृतिक शोभा भी बड़ी ही सुहावनी है । उसके नीचे के भाग में आए हुए मैदान में कल्पवृक्ष की नाईं एक वटवृक्ष कई सर्दी गर्मी और बरसात को गुजरता देखते हुए शान से खड़ा है । उसके नीचे उसको चारों ओर से घेरे हुए चबूतरा भी बना हुआ है । जिस समय पूज्य श्री उस चबूतरे पर अपने आसन पर विराजमान होकर दर्शनार्थ आए हुए भक्त वृन्द के सम्मुख ब्रह्मज्ञान का सत्संग करते हैं, उस समय का दृश्य देखते ही बनता है । सारे संसार की अशांतिमय भाग-दौड़ से दूर जैसे सैकडों वर्ष पूर्व के ऋषि-मुनियों के जमाने में हम एकाएक पहुँच गए हों-ऐसा प्रतीत होने लगता है । सदियों से हिरन की भांति भागता हुआ चंचल मन उस समय एकाग्र होकर अतीव शांति का अनुभव करने लगता है । उस समय सम्मुख विराजमान पूज्य श्री का ब्रह्मतेज से दमकता उन्नत ललाट, आत्मानन्द से तृप्त विशाल नेत्र, सौम्य एवं तेजोमय मुखमण्डल, सिर पर श्याम वर्ण घुंघराले बाल, लम्बी-घनी-दाढ़ी और भरावदार देह पर लपेटी हुई धवल चादर-यह सब एक ऐसा मनोहारी दृश्य उपस्थित करते हैं मानो साक्षात् भगवान् वेदव्यास परम



गुफाका द्वार खोलकर विनोद के साथ भक्तों को सत्संग-लाभ देते हुए ।

माउन्ट आबु में नलगुफा पर



गुफा का द्वार खोलकर दर्शनार्थ आए हुए भक्तों को प्रसाद देते हुए 'पूज्यश्री'



सन १९७२ के विश्व हिन्दू परिषद् के सिद्धपुर सम्मेलन में विशालसभा को उद्‌बोधित करते हुए पूज्यश्री



कैलाश पीठाधीश्वर पूज्यश्री विद्यानन्दगिरीजी महाराज के साथ पूज्यश्री



पूज्यश्री आश्रम में पधारे हुए बम्बई के पू. स्वामी



आपके भीतर विराजमान अपने ही



आओलाल-झूलेलाल
(चेटीचण्ड पर भक्तों को उत्साह दिलाते हुए)



कीर्तन करते हुए अपने आप में खो जाओ
(भक्तों को कीर्तन की मस्तीमें डुबाते हुए)

कृपालु होकर अपने वचनामृत का पान भक्तों को कराने आ उपस्थित हुए हों ।

गुफा के चारों ओर आए हुए गिरिश्रृंग, ऊपर विशाल नभमण्डल, चारों ओर फैली हुई अपनी मस्ती में हवा के साथ हिलते हुए वृक्षों की हरियाली, भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षियों का मीठा कलरव और तन मन दोनों को शीतलता देनेवाली बहती हुई मन्द मन्द समीर-कैसा भी अशांत हृदय मनुष्य हो इस पवित्र स्थान में आकर उसका चित्त शांत होने लग जाता है । गुफा के आसपास भयंकर जंगल फैला हुआ है । उस में जंगली सांप, बिच्छु, रीछ आदि प्राणियों का वास रहता है । सांयकाल एवं उसके बाद रात्रि में रीछ की आवाज तो कई बार गुफा के आजु-बाजु में ही सुनाई पड़ती है ।

रंग-बिरंगे सांप कईबार दिन में रास्ते चलते लोगों को देखने में आते रहते हैं । फिर भी पूज्य श्री के दर्शनार्थ आए लोगों में से किसी को भी आज तक उनके कारण कोई हानि नहीं पहुँची है ।

चांदनी रात में तो यह स्थान भगवान शंकर के कैलाश धाम की भांति चांदी के सफेद रंग में चमक-दमक उठता है । उस समय उस घने एकांत में बैठकर चाँद की ओर एकटक निहारते हुए साधक को ध्यान लगाने के लिये अधिक प्रयास की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती ।

वस्तुतः तपस्वी एवं योगीजनों के निवास स्थान भी कैसी-कैसी अद्भुत जगहों में स्थित होते हैं ! जिस भूमि पर ईश्वरी-सत्ता से तादात्मय किये हुए मानव देह रूप में ऐसी विभूतियाँ रहती हैं, वहाँ उनकी उपस्थिति मात्र से हिंसक जीवजन्तु भी अपना खूंख्वार स्वभाव भूलकर अहिंसात्मक व्यवहार करते हैं। ऐसे महापुरुषों के सम्पर्क में आकर और उनके वचनामृत का पान करके यदि अपने दुर्गुणों को भूल कर पापी मनुष्य भी सज्जन एवं महान् बन जाय तो इस में क्या आश्चर्य ?

ज्ञानेश्वरी गीता के छठे अध्याय में योग साधना के लिये जिस एकांत, शांत, नयनरम्य, नैसर्गिक, समशीतोष्ण एवं पवित्र वातावरण वाले स्थान का वर्णन किया गया है- इस स्थान में ऐसी सभी विशेषताएं मिलती हैं । जल के लिये नीचे एक गहरा कुआ भी है । साधना के लिये आसपास अन्य प्राकृतिक गुफाएं भी हैं ।

अग्नेश्वर गुफा

नलगुफा से थोड़ी दूर घनघोर जंगल में चारों तरफ पर्वत-शिखरों से घिरि हुई खाई में एक अन्य 'अग्नेश्वर' नामक सुंदर प्राकृतिक गुफा स्थिति है । उसके पास से ही पहाड़ में से एक कुदरती पानी का झरना हमेशा बहता रहता है । इस स्थान पर जंगल के हिंसक प्राणी सिंह, रीछ, हिरण आदि पानी पीने के लिये आते रहते हैं । पूज्य श्री ऐसे भयंकर स्थान में भी अकेले घनी रात्रि में

भ्रमण के लिये निकल पड़ते हैं । यह उनकी प्रखर आत्म-निष्टा का ही द्योतक है । क्योंकि इस स्थान पर दिन में भी अच्छे-अच्छे साहसी लोग भी अकेले जाने की हिम्मत नहीं करते ।

पूज्य श्री ऐसे भयंकर और डरावने स्थानों पर साधना करने में साधकों की उत्साह वृद्धि के लिये कभी-कभी स्वयं अपने आबू साधनाकाल का वर्णन करते हुए यह प्रसंग बताया करते हैं-

"पहले हम भी आबू की नलगुफा में तपस्या करने गए तो प्रारंभ में बहुत भय लगा था । थोड़ी सी आवाज होती तो लगता रीछ या कोई अन्य जंगली जानवर आ गया । रातभर जैसे तैसे रहा । सुबह हुआ तो वहाँ से भागा । फिर मन में सोचा-

'भगवान के रास्ते चलना एक बार तय कर लिया है, तो फिर डरना कैसा ? ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डर ?....क्या इसी हिम्मत पर साधना करने निकले थे ?'

बस ! फिर से लौट आया गुफा में । पहले रात को गुफा का दरवाजा भीतर से बन्द रखा । फिर अन्दर की सांकल भी खुली रखने लगा । फिर निर्भयता बढ़ी तो रात को दरवाजा भी खुला छोड़ने लगा ।...और बाद में तो ऐसी निर्भयता आई कि रात को १०-११ बजे हिंसक प्राणियों के गुफा-गह्वरों के मध्य घूमने जाया करने लगा ।... किस से डरना ? रीछ, सांप आदि से....? वे कोई दूसरे हैं ? दूसरा कुछ है ही नहीं ।

भाई ! ये सब तुम्हारा ही पसारा है । तुम्हीं दृष्टा बनते हो और तुम्ही दृश्य बनते हो । अपने आप से क्या भयभीत होना ? यही तो अज्ञान है ! ज्ञानदृष्टि तो कहती है–जो कुछ दृश्यमान जगत है वह तुम्ही हो, अन्य कुछ है ही नही । जिसको इस बात का विश्वास है कि भीतर बाहर सर्वत्र मै ही मैं हूँ, उसके लिये संसार में असंभव कुछ भी नहीं है । जब मैं ही मैं हूँ तो मैं सब का स्वामी हूँ और जो चाहे सो कर सकता हूँ । इसलिये जब सर्वात्म दृष्टि हो जाती है तब उसके पास कोई रोग, दुःख और मौत फड़क भी नहीं सकते । अतः ऐसी दृष्टि वाले महापुरूष जब कहते हैं–

'तुम्हारे भय से सूर्य कांपता है, पवन चलती है, तुम्हारे खौफ से समुद्र उछलता है, तुम्हारे खौफ से मौत मारी मारी फिरती है–' तो अज्ञानी लोग विश्वास नहीं कर पाते। परन्तु तथ्य यही है । तुम परम निर्भय हो, आनन्द स्वरूप हो । तुम्हें भयभीत करने के लिये अन्य कुछ बना ही नहीं है । जो कुछ कमजोरी है वह सब तुम्हारे मन की, है इसलिये तुम तो मस्ती से गाओ–

हमीं हैं खुद खुदा यारों, नहीं पैदा हमारी है ।
हमीं जिन्दा हमेशा हैं, न मरना मन करारी है ।।
पड़ी वे खौफ की कफनी, न है माला न है जपनी ।
मिटी तनि ताप की तपनी, खुली अनुभव की वारी है ।।"

एक साधक का अनुभव

आबू की नलगुफा पर पहले एकबार शिवलाल भाई पूज्य श्री के साथ थे । एक रात को पूज्य श्री उन को साथ लेकर जंगल में घूमने निकल पड़े । शिवलाल भाई उस रात का अपना अनुभव बताते हुए कहते हैं :

रात को एक बार बापू मुझे लेकर घूमने निकले । वो तो ऐसे चलते थे जैसे सब रास्ते उनके देखे हुए ही हों । मार्ग में एक पत्थर की बड़ी स्वच्छ शिला देखकर बापू तो उस पर बैठ गए और ध्यान–मग्न हो गए । इतना घना अंधेरा, एकांत जगह, बियाबान जंगल में सांय–सांय की आवाज–बस मैं तो घबराने लगा । हृदय जोरों से धड़कने लगा । जरा सी कहीं से आवाज आती तो चौंक उठता–शायद रीछ आया । जरा सा कहीं पत्ता खड़कता तो लगता कोई विषधर सांप आ रहा है । जब तक बापू ध्यानस्थ थे तब तक मेरी ऐसी ही हालत रही–मेरा तो ऐसे में क्या ध्यान लगता ? मन तो यही कह रहा था कि कितनी जल्दी बापू ध्यान से उठें तो जल्दी से गुफा पर लौट चलें । वस्तुतः वह स्थान बड़ा ही निर्जन और भयावना था !

बन्दूक नहीं, भीतर की निर्भयता चाहिये

आबू पर मिलिटरी ट्रेनिंग का भी बड़ा सेन्टर है । एक बार ऐसे ही घूमते हुए कोई मिलिटरी का अफसर जंगल में रास्ता भूल गया । अचानक उसकी पूज्य श्री से भेंट हो गई । पूज्य श्री को देखकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला–

"अच्छा हुआ आप मिल गए नहीं तो मैं बड़ा परेशान हो रहा था कि किधर जाऊँ ?"

पूज्य श्री–"क्यों, क्या बात है ?"

अफसर–"क्या बात है ?....अजी देखते नहीं कैसा भयानक जंगल है और....!"

पूज्य श्री–"और क्या....?

अफसर–"और आज खाली हाथ हूँ। बन्दूक भी साथ नहीं है। यदि कहीं से कोई जंगली जानवर आ जाय तो.... बन्दूक या रायफल के बिना बचाव भी अपना कैसे करें ? आप जरा हमारा बचाव करते रहना स्वामीजी !

पूज्य श्री–"अरे, बचाव कोई रायफल करती है क्या ? और बन्दूक और रायफल के द्वारा बना हुआ बचाव कब तक रहेगा ? बाहरी आधार पर टिका कोई भी बचाव, बचाव नहीं है, कोई सुरक्षा सुरक्षा नहीं है, कोई भी सुख सुख नहीं है, कोई भी राहत राहत नहीं है। बचाव, सुरक्षा, सुख और राहत के नाम पर धोखा है। जब तक भीतर के आधार (आत्मदेव) की पहचान न हो जाय तब तक मनुष्य कितना ही धनी दिखे–निर्धन है, कितना ही बली दिखे–निर्बल है, कितना ही प्रतिष्ठित दिखे– अप्रतिष्ठित है, कितना ही सुखी दिखे–दुखी है, कितना ही निर्भय दिखे भयभीत है।"

फिर पूज्य श्री ने उस से कहा–"भय का कोई कारण नहीं है। व्यर्थ में क्यों भयभीत होते हो जंगली जानवरों से ! देखो, हमारे हाथ में भी तो बन्दूक नहीं है। जो हमारा बचाव करता है बिना बन्दूक के, वही तुम्हारे भीतर भी बैठा है। बस, उस पर विश्वास करो और चलते रहो। जो भीतर से निर्भय है, उसे कोई भयभीत नहीं कर सकता।"

आगे जाकर पूज्यश्री ने उसे उसका आगे जाने का रास्ता दिखा दिया।

बाहर का लौकिक पथ और भीतर का पारमार्थिक पथ दोनों पथों का पथप्रदर्शन करने वाले पूज्य श्री के पास आने मात्र से एवं उनके वचन सुनने मात्र से मन की दुर्बलता भाग जाती है और एक विशेष प्रकार के साहस का संचार मन में होने लगता है।

पूज्यश्री का अद्भुत संकल्प बल

अभी इन दिनों भी पूज्य श्री की आज्ञा प्राप्त कर अपनी आत्म-निष्ठा की दृढ़ता के लिये कई साधक इन गुफाओं में जाकर रहते हैं।

ई. स. १९७५ की गर्मी के दिनों में जब पूज्य श्री का निवास नल गुफा में था उस समय कुबेरनगर के आत्मारामभाई (राज दूध घर वाले) पूज्य श्री की आज्ञा से थोड़े दिन अग्नेश्वर गुफा में साधना के लिये रहे थे। एक दिन सुबह ही सुबह वे गुफा से बाहर आकर दरवाजे के पास खड़े थे कि सामने ही उन्होंने देखा कि एक श्यामवर्ण काले काले बालों वाला विशालकाय भालू (रींछ) खड़ा है। वे थोड़ी देर शांति से खड़े उसे निहारते रहे। भालू ने

भी शांति से पानी पीया और बिना कुछ हरकत किये अपने रास्ते चल पड़ा । आत्माराम भाई भी वहां से थोड़ी देर बाद सही-सलामत नल गुफा पर पहुँच गए । कितनी ही दूर से मनुष्य की गंध पाकर शिकार के लिये दौड़ पड़ने वाला भालू भी अपने बिलकुल सम्मुख आए हुए शिकार को कुछ भी न कर बकरी की तरह शांत होकर चला जाए -यह पूज्य श्री के उस भूमि पर संकल्प-बल का प्रताप नहीं तो और क्या है !

साधक एवं सर्प एक ही गुफा में

सन १९७६ की गर्मी के दिनों में इसी प्रकार नल गुफा के निकट की एक गुफा का दरवाजा साधक की भूल से खुला ही रह जाने से दिन में एक नागदेवता ने गुफा में घुसकर अपना अड्डा जमा लिया । रात्रि को देर से साधक ने अन्दर प्रवेश किया और बिना कुछ प्रकाश किये देखे अंधेरे में ही वह दरवाजा बन्द कर सो गया । इस प्रकार पूरी रात नागदेवता भी गुफा में सोते रहे । प्रातः काल जब साधक ने दरवाजा खोला तो नागदेवता को उसने बाहर निकलते देखा ।

इस प्रकार की कई घटनाएं हिंसक जीव-जन्तुओं के साथ इस स्थान पर घटती रहती हैं, मगर पूज्यश्री के कृपा प्रताप से आज तक उनके किसी शिष्य को कोई हानि नहीं हुई है । वस्तुतः जो शिष्य अथवा साधक अपने सद्गुरु



मेरे मेरे सब कोऊ कहे, मरना न जाने कोय ।
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होय ॥



गुलाब बनकर महक तुझे ज़माना जाने
फूलों से तुम हसना सीखो -पूज्यश्री



भीतरी प्रेम एवं प्रसन्नता के साथ अपने पास जो भी अच्छा है, उसे लुटाओ और सदैव प्रसन्न रहो।



आत्मज्ञान प्राप्ति के बिना सच्ची शांति नहीं मिलेगी, यह बात आज समझो अथवा बाद में-सत्य यही है।

पर पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा रख कर साधना करते हैं उनका कौन बाल भी बांका कर सकता है ?

गुरु बिन भवनिधि तरहि न कोई

शिष्य में यदि गुरु के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण का भाव है तो उस शिष्य के लिये सारी प्रतिकूलताएं साधना मार्ग में अनुकूलताओं के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उसके लिये यह मार्ग एकदम सरल बन जाता है। कई साधक बिना गुरु का मार्ग-दर्शन लिये साधना करने का प्रयास करते हैं, मगर वे सफल नहीं हो पाते; क्योंकि उनका सदियों से अपने अन्दर पाला पोसा हुआ अहंकार उन्हें आगे नहीं बढ़ने देता अथवा वे किसी ऐसे पांखडी गुरु के चक्कर में फंस जाते हैं जो उनके अहंकार को पोषण देते हों। और जिस गुरु ने स्वयं साक्षात्कार नहीं किया हो वे दूसरे को कैसे करा सकते हैं ? इसलिये ऐसे गुरु और ऐसे शिष्य दोनों ही इस माया के चक्कर में गोते खाते रहते हैं :

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेलें दांव।
दोनों बूडे बावरे, चढ़ी पत्थर की नाव॥

साधक मन को स्थिर एवं एकाग्र करना चाहता है, मगर यह चंचल मन का स्वभाव है कि उसे जितना अधिक स्थिर करना चाहेंगे उतना ही यह बन्दर की तरह अधिक कूदमकूद करेगा। यम-नियम-प्राणायाम आदि विधियों द्वारा

उसे कुछ हद तक शांत करने में साधक यदि सफल हो भी जाय, परन्तु मन-वाणी से परे उस परम आत्म तत्त्व में स्थिति बिना सद्गुरु के नहीं हो पाती।

आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ना है तो गुरु पहली आवश्यकता है। क्योंकि यह विषय है ही ऐसा। कहा भी गया है:

वेदान्तानामनेकत्वात् संशयानां बहुत्वतः।
वेद्यस्याप्यतिसूक्ष्मत्वान्न जाति गुरुं विना॥

अर्थात् वेद वेदान्त आदि शास्त्र अधिक होने से, मनुष्य के मन में संशयों का भी पार न होने से और ऐसेही जो जानना है वह अति सूक्ष्म होने से गुरु बिना वह समझा नहीं जा सकता।

स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है:

"यह संजीवनी शक्ति पुस्तकों से नहीं मिल सकती। इस शक्ति की प्राप्ति को एक आत्मा एक दूसरी आत्मा से ही कर सकती है-अन्य किसी से नहीं....। पुस्तकों का अध्ययन करते समय हमें कभी-कभी यह भ्रम हो जाता है कि इससे हमें आध्यात्मिक मार्ग में सहायता मिल रही है; पर यदि हम ऐसे अध्ययन से अपने में होने वाले फल का विश्लेषण करें, तो देखेंगे कि उससे अधिक से अधिक हमारी बुद्धिको ही कुछ लाभ होता है, अंतरात्मा को नहीं। पुस्तकों का अध्ययन हमारे आध्यात्मिक विकास के लिये पर्याप्त नहीं

है। यही कारण है कि यद्यपि हममें से लगभग सभी आध्यात्मिक विषयों पर बड़ी पाण्डित्य पूर्ण बातें कर सकते हैं, पर जब उन बातों को कार्यरूप में घटाने का-यथार्थ आध्यात्मिक जीवन बिताने का अवसर आता है, तो हम अपने को सर्वथा अयोग्य पाते हैं। जीवात्मा की शक्ति को जागृत करने के लिये किसी दूसरी आत्मा से ही शक्ति का संचार होना चाहिये।"

यम-नियम-प्राणायाम आदि सिखाने वाले, गीता-उपनिषद् आदि के भिन्न भिन्न प्रकार से अर्थ समझाने वाले पोथी-पण्डितों के रूप में तो बहुत गुरु मिल जाते हैं, परन्तु जिन्होंने वास्तविक रूप से हस्तामलकवत् आत्मा का अनुभव किया है और उसी में रमण करते हैं-ऐसे तत्त्ववेत्ता महापुरुष का मिलना बहुत ही दुर्लभ है। भगवान श्रीकृष्ण ने ऐसे महापुरुष की दुर्लभता बताते हुए कहा है-

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(अ. ७।१९)

"बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी जो इस प्रकार मेरे को भजता और जानता है कि सब कुछ वासुदेव ही है अर्थात् वासुदेव के सिवाय कुछ है ही नही-ऐसा महात्मा अति दुर्लभ है।"

पूज्य श्री को ऐसे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु मिले थे और

उन्ही की कृपा से इतने वर्ष योग-ध्यान-तपस्या आदि करने के पश्चात् वही ब्रह्मनिष्ठा उनमें पूरी पूरी उतरी थी। अपने उन्हीं साधना काल के अनुभवों एवं ब्रह्मनिष्ठा का पूरा-पूरा लाभ आज पूज्य श्री के निकट आने वाले साधक वर्ग को मिलता है-यह उस साधक वर्ग का सौभाग्य ही है।

विशाल धार्मिक सम्मेलनों में उद्बोधन

कभी-कभी पूज्यश्री का लोकहितार्थ डीसा, पालनपुर, सिद्धपुर, गोधरा, भावनगर, बड़ोदा, हिम्मतनगर, जयपुर, अजमेर आदि विभिन्न स्थानों पर भक्त-समुदाय एवं साधक वर्ग के अत्यंत आग्रह के वशीभूत हो एवं उन्हें लाभ हो इस हेतु से दौरा होता है। उस समय कई स्कूल-कॉलेजों में भी उनके कार्यक्रम का आयोजन वहाँ के गण्यमान्य लोग करते हैं। उस समय शारीरिक मानसिक, और आध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से पूज्यश्री का मार्ग-दर्शन युवा विद्यार्थी-समुदाय के लिये बड़ा ही महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

सन १९७१ में कानपुर में आर्यनगर में आयोजित 'श्री अखिल भारतीय वेदांत रामायण सम्मेलन' में भाग लेने वाले ४२ वक्ताओं में पूज्यश्री भी उपस्थित थे और वहाँ के श्रोताओं को अपनी अनुभूत अमृत वाणी का लाभ दिया था।

सन् १९७३ में सिद्धपुर में 'विश्व हिन्दू परिषद' का एक भव्य कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। उस समय पूज्यश्री माउन्ट आबू थे, मगर भक्त समुदाय के अतिशय प्रेम-

पूर्ण आग्रह के वश हो वहाँ वे पधारे थे और उसमें उपस्थित विशाल जनसमुदाय को अपनी अमृतवाणी का लाभ दिया था।

संतों की देह का विचित्र प्रारब्ध

संतों की देह का भी प्रारब्ध होता है, क्यों कि वे भी तो देह धर कर ही मनुष्य रूप में इस धरती पर जन्म लेते हैं। गुरु नानक साहब को गृहस्थी में आना पड़ा और दो संतानों को जन्म देना पड़ा। संत ज्ञानेश्वर महाराज के पिता श्री को भी संन्यास लेने के पश्चात्-फिर से गृहस्थी में आना पड़ा और संतानों को जन्म देना पड़ा। महाराजा जनक के गुरु याज्ञवल्क्य के मैत्रेयी और कात्यायनी दो पत्नियाँ थी। भगवान श्रीराम के गुरु महर्षि वसिष्ठ गृहस्थी थे। महर्षि वेद व्यास को भी महान ज्ञानी शुकदेवजी जैसा पुत्र रत्न प्राप्त था। गृहस्थी अथवा संन्यासी जिनके भी भीतर वह दिव्य आत्म-तत्त्व प्रकाशित हो गया उन्होंने उसी निर्मल ज्ञान की धारा को लोक-कल्याणार्थ बहाया है और उनका सांनिध्य प्राप्त कर लोगों ने अपने को धन्य धन्य माना है!

श्री योगवसिष्ठ महारामायण में महर्षि वसिष्ठ भगवान राम को उपदेश देते हुए ऐसे ही ज्ञानी जीवन्मुक्त महात्माओं के बारे में कहते हैं:

"हे राम! जिनको गृहस्थी में ज्ञान प्राप्त हुआ हैं वे गृहस्थी ही में रहते हैं और उसका त्याग नहीं करते-जैसे मैं हूँ। जिनको राज्य में ज्ञान प्राप्त हुआ हैं वे राज्य में ही रहते हैं-जैसे तुम हो। हे राम! कुछ ज्ञानवान गृहस्थी हो में रहे हैं,

कुछ राज्य ही करते हैं, कुछ संन्यासी हो रहे हैं, कुछ वनमें विचरते फिरते हैं, कुछ पर्वत–कंदरा में ध्यानावस्थित हो रहे हैं, कुछ नगरों में रहते हैं, कुछ शास्त्र विहित कर्म करते रहे हैं, कुछ अवधूत हो रहे हैं, कुछ भिक्षा मांग मांग कर भोजन करते रहे हैं, कुछ कटोर वचन बोलते रहे हैं, कुछ अज्ञानी की तरह विचरते रहे हैं।...वे शुभ कर्म करें अथवा अशुभ कर्म करें, परन्तु कोई क्रिया उनको बन्धन नही करती।"

आदर्श ऋषि–जीवन जीने का आग्रह

पूज्य श्री ने अपने सद्‌गुरुदेव के सम्मुख संसार से विरक्त रहने की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु पूज्य श्री की देह के प्रारब्ध को यह मंजूर नहीं था। उनके सद्‌गुरुदेव ने संवत् २०२८ में हरिद्वार में उनको कहा–

"आप अब गृहस्थ में रहकर जल में कमलपत्रवत् निर्लेप ऋषि–जीवन व्यतीत करते हुए संसार में भूले–भटके दुखी लोगों को मोक्षमार्ग जो परमसुख का मार्ग है–उस पर आरूढ करो। जो कुछ आपने जाना है उसी परम आनन्दस्वरूप अपने आपको जानने में अन्य लोगों के लिये मार्गदर्शक एवं मददरूप बनो। क्योंकि अब आपके लिये गृहस्थ एवं विरक्त में कोई भेदभाव नहीं है। जो लोहा एक बार पारस के स्पर्श से सोना बन चुका अब उसपर जंग नहीं लग सकता। अतः अब लोगों को आप वास्तविक जीवन जीने की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन दो।"

पुनः अहमदाबाद की ओर

इस प्रकार परमपूज्य सद्‌गुरुदेव के अत्यंत आग्रह के

वश हो एवं अपनी मातुश्री को दिये हुए वचन के पालनार्थ पूज्य श्री ने संवत २०२८ में आषाढ सुद १५ अर्थात् गुरुपूर्णिमा के पवित्र दिन को अहमदाबाद की धरती पर पैर रखा।

परिवार वालों की परिकल्पनाएँ

इस बार पूज्यश्री को काफी वर्षों के पश्चात् अपने बीच पाकर कुटुम्बियों एवं सम्बंधियों के हर्ष का पार न रहा। शायद् अब पूज्य श्री कभी नहीं लौटेंगे–इस प्रकार की निरंतर बढ़ती हुई निराशा का भंग हो जाने से सब में एक हर्ष की लहर दौड़ गई। अब वे मन ही मन अपने मन को मोहनेवाले हवाई किले बनाने लगे कि अब पूज्यश्री हमारे बीच हमारी ही तरह रहकर संसारी जीवन व्यतीत करेंगे। बेचारे मनुष्य की अल्प बुद्धि और क्या विचार कर सकती है? वस्तुतः जीवन क्या है इसकी उसे क्या खबर....?

जन्म से ही संसार में रचा–पचा मनुष्य धन कमाना, शादी करना, मकान बनवाना और एक छोटा–मोटा कुटुम्ब खड़ा करके इस संसार से विदा हो जाना–बस, इसी को मानव जीवन की सार्थकता मान लेता है।

केवल खाना–पीना, सो जाना, भय के प्रसंग में भय-भीत होना और कामेच्छा की तृप्ति करना–इतना ही यदि मनुष्य जीवन का लक्ष्य होता तो पशु और मनुष्य में अन्तर ही क्या रहा? इतने कार्य तो पशु भी करते हैं!

वस्तुतः पूज्यश्री को कुटुम्बी जन एवं रिश्तेदार अभी

भी समझ नहीं पा रहे थे कि ये आसूमल नाम से पुकारे जाने वाले मानव-देहधारी अपनी ही तरह हाड-मांस के दिखने वाले हमारे सम्बंधी वही नहीं रहे-जो पहले थे। अब उनके भीतर कोई ऐसा ब्रह्मानन्द का पुष्प खिल उठा है जिसकी कि दिव्य आध्यात्मिक सुगंध दिग्-दिगन्त में शीघ्र ही फैलने वाली है। अब उनके भीतर एक ऐसा दया के सागर का जन्म हुआ है जिसकी एक एक बूंद द्वारा असंख्य दुखों से पीड़ित लोगों के हृदयों को शांति मिलेगी। अब उनके भीतर उस अंतिम आध्यात्मिक तेज का प्राकट्य हो चुका है कि जिसके कारण अब वे जहाँ-जहाँ पैर रखेंगे वह धरती पावन होने वाली है।

वर्तमान आश्रम का प्रारंभ

लोग समझें न समझें, मगर पूज्यश्री अहमदाबाद में पधारकर भिन्न भिन्न स्थानों में एकत्रित जनसमूह में अपनी अमृत वाणी का पान कराने लगे। उनका स्वभाव शांत, एकांत एवं प्रकृति प्रेमी होने से एक बार वे साबरमती के पास स्थित मोटेरागांव के पास बहती हुई साबरमती नदी के किनारे भ्रमणार्थ पहुँच गए। वहाँ एक स्थान पूज्यश्री को बहुत पसन्द आया। भक्तलोग तो चाहते ही थे कि किसी प्रकार कोई एक ऐसा स्थान यहाँ अवश्य बने, जिसके बहाने पूज्यश्री का यहाँ पर रुकना हो सके और उनका निरंतर सांनिध्य-लाभ यहाँ के लोगों को मिलता रहे। बात-बात में ही वहाँ एक छोटी सी कुटिया बनाने का निर्णय ले लिया

गया और डेढ दिवस में ही पूज्यश्री के लिये एक छोटीसी कुटिया बनकर तैयार हो गई।

निर्जन ऊबड-खाबड टेकरा मंगलधाम बन गया

कुछ ही समयोपरांत नदी किनारे का यही निर्जन ऊबड-खाबड़ टेकरा भक्तों के प्रयत्न से एक मंगलधाम के रूप में परिवर्तित हो गया। तत्त्वनिष्ठ महापुरुषों की चरण रज जिस धरती पर पड़ती है, वह धरती वस्तुतः तीर्थधाम बन जाती है और उस तीर्थधाम की यात्रा करके कई लोगों का जीवन पावन बन जाता है। आज जितने भी तीर्थ बन चुके हैं, वे सब उन ब्रह्मानन्द की मस्ती में रमते हुए महापुरुषों के प्रति वस्तुतः ऋणि हैं जिनके पावन चरण प्रथम बार पड़ने से वे पवित्र हो गए और लोगों को आध्यात्मिक शांति का लाभ देने की योग्यता अपने में अर्जित कर पाए।

कहते हैं, इसी साबरमती के किनारे प्राचीनकाल में दधीचि ऋषिने तपस्या की थी। इस स्थान पर सर्वत्र कंटीली झाडियाँ फैली हुई थी। जमीन बड़ी पथरीली और ऊबड-खाबड थी। उसमें बडे बड़े खड्डे-खाइयाँ होने से दिन को भी इस निर्जन स्थान पर लोगों को चोर-डाकुओं का बहुत भय बना रहता था। परन्तु आश्रम बन जाने के बाद यहाँ का भय-जनक एवं दूषित वातावरण एकदम बदल गया है। अब अर्धरात्रि को भी इधर-उधर आने-जाने में किसी को कोई भय नहीं रहता। यह पूज्यश्री की पावन उपस्थिति का ही

चमत्कार है कि ऐसा निर्जन टेकरा भी आज लोगों के लिये नंदनवन बना हुआ है ।

आश्रम की प्रगति

पूज्यश्री की कुटिया के पश्चात् सत्संग के लिये एक छोटा सा हाल एवं उसके बाहर चबूतरा बनाया गया । धीरे-धीरे सत्संग में आने वाले लोगों की संख्या बढ़ी तो उसी के साथ उससे लगभग दुगुना बड़ा हॉल बनाया गया । परन्तु पूज्यश्री का आत्मिक स्नेह एवं आकर्षण कुछ ऐसा है कि जो भी एक बार उनके समीप आया और उनकी कृपा-कटाक्ष का पात्र बना, फिर उसे आत्मिक-शांति के लिये कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं महसूस हुई । इस कारण उत्तरोत्तर सत्संगी भक्त-समुदाय निरंतर बढ़ते जाने से एक अन्य विशाल कच्चा हॉल घास के छप्परों से ढांककर बनाया गया । मगर वह भी अब छोटा पड़ने लगा है । उसे भी अधिक विशाल बनाने की योजना भी बन गई है ।

अपनी स्वाभाविक गति से आश्रम निरंतर प्रगति करता जा रहा है ।

हर बुधवार और रविवार को आश्रम में बहुत बड़ा भक्त समुदाय पूज्यश्री की अमृतवाणी का पान करने के लिये आ जुटता है । हरि ओ....म् की सामूहिक ध्वनि, कीर्तन और ब्रह्मज्ञान का सत्संग जब होता है तो भक्तों का उमंग-भरा उत्साह देखने योग्य होता है । संसारी जवाबदारियों

से दबे हुए हृदय और बुझे हुए चेहरे लेकर जो लोग आते हैं, उनके जाते समय खिले हुए चेहरे देखकर यह सहज ही समझा जा सकता है कि अवश्य यहाँ के वातावरण में एवं पूज्यश्री की अमृतमय वाणी में कुछ ऐसा आध्यात्मिक ओज है जो हर प्रकार की अशांति को दूर करके मनुष्य के हृदय में आगे के लिये नव-स्फूर्ति का संचार कर देता है ।

आश्रम द्वारा समाज को होने वाले अनुपम लाभ

सामाजिक दृष्टि से आश्रम द्वारा बहुत लाभ समाज को जाने-अनजाने हो रहे हैं-इसके ठोस उदाहरण प्रत्यक्ष देखने में आ रहे हैं । समाज का नैतिक एवं धार्मिक जीवन समाज के उत्थान की रीढ होती है । वह यदि कमजोर होगी तो ऊपर से कितना ही आकर्षक एवं उन्नत दिखने वाला समाज किसी भी विरोधी थोड़े से धक्के को भी सहन नहीं कर पाएगा और तुरंत धराशायी हो जाएगा । ऐसे कई इतिहास में उदाहरण हैं कि जब भी किसी राष्ट्र अथवा समाज का पतन हुआ है तो उसमें उसका कारण नैतिक एवं धार्मिक चरित्र का पतन ही मौलिक रूप से इतिहास विशेषज्ञों द्वारा जिम्मेदार ठहराया गया है ।

पूज्यश्री की उदार कृपा एवं सत्संग के प्रताप से कई लोगों को कल्पनातीत लाभ हुए हैं । उनकी पतन की ओर तीव्र गति से बढ़ती हुई जीवनधारा एकदम से उत्थान की ओर पूज्यश्री की कृपा से मुड़ी है । अनेक सिनेमा और मांसाहार के व्यसन में ग्रस्त, दारु (शराब) पीने एवं बेचने

वाले, गाँजा-भांग और तम्बाकू बेचने एवं पीने का व्यसन रखने वाले, सट्टा और जुआ खेलने वाले-पूज्यश्री के संग में आकर अपने दुर्गुण छोड़कर सद्गृहस्थ और ईश्वर-भक्त बने हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

वह कष्ट अभिशाप या वरदान-

अहमदाबाद के एक भाई दयालदास जो बहुत पीते थे एक बार स्वामीजी के दर्शन को आए। आये थे ऐंठ के साथ मगर उस संत-दर्शन में न मालूम क्या चमत्कार था कि उन्होंने स्वामीजी को वचन दे दिया 'आप कहते हैं तो अब मैं शराब नहीं पीऊंगा।'

कुछ ही दिन बाद उनके एक मित्र ने उनको बहुत बढिया मदिरा की बोतल भेजी। उन्होंने अपनी पुरानी आदत के अनुसार बोतल को मुंह से लगाया, परन्तु ता. १६-१-७६ शुक्रवार रात्रि को कई सत्संगी भक्तों के बीच उन्होंने स्वयं कहा (उन्ही की आवाज में):

"खबरदार! मत पी...." कहीं से आवाज आई। मैंने इधर-उधर देखा, पर आसपास कोई नजर नहीं आया। मैं पुनः बोतल को मुंह के पास ले आया, परन्तु वही आवाज पुनः सुनाई पड़ी। समझ में नहीं आ रहा था कि वह आवाज कहाँ से आ रही है? बाहर से आ रही है कि अन्दर से, मेरे कान यह सुन रहे हैं कि मन? कहीं यह भ्रम तो नहीं है मेरा? पर क्या करूँ, इतनी बढिया चीज...! आज तो कम से कम...भले थोडी ही, पी लेता हूँ। मैंने बोतल को मुंह लगाया। इस बार मुझे लगा जैसे अन्दर से सम्पूर्ण हृदय उबलकर कह रहा है-

'मत पी...देख, पछताएगा!'

पर कुछ घूंट गले के नीचे उतर ही गए थे। अब मुझे स्मरण आने लगा-नहीं नहीं!! वह स्वामीजी की ही आवाज थी, भले ही कहीं से आई हो।

सबको धोखे में डालने वाला 'मैं' आज अपने मन के धोखे का शिकार हो गया था। रोज डेढ-दो बोतल पीने वाला 'मैं' आज कुछ घूँट भी हजम नहीं कर सका। सम्पूर्ण शरीर मेरा उल्टी, पेट-दर्द और दस्तों से आन्दोलित हो उठा। कईयों को दारूण कष्ट देने वाला 'मैं' उस कष्ट को सहन नहीं कर पा रहा था। रात भर जो भुगता वह मेरा मन ही जानता है। रात्रि के दो बजे मैंने स्वामीजी के फोटो के आगे रो-रोकर माफी मांगी, तब दर्द कुछ हल्का पड़ा और थोड़ा चैन मिला। उसके बाद तो स्वामीजी के चरणों में आकर मैंने खूब पश्चाताप किया।

यह स्वामीजी के आशीर्वाद का ही परिणाम है कि मेरे जैसा पतित, बदमाश और गुण्डा व्यक्ति, सभ्य समाज की नैतिकता से, भगवान से कोसों दूर भागने वाला व्यक्ति-आज आपके सामने परमेश्वर प्राप्ति के पंथ के पथिक के रूप में खडा हूँ। आज भी उस रात्रि के कष्ट का स्मरण आता है, तो सोचता हूँ कि ऐसे जीवन की ओर धकेलने वाला वह

कष्ट अभिशाप नहीं था, वरदान ही था। धन्य हैं ऐसे महापुरुष और धन्य हैं उनके कृपा पात्र हमारे जैसे...।

मुझे पुनर्जन्म मिला

इसी प्रकार शहर के एक अन्य कई दुर्व्यसनों से ग्रस्त सज्जन गुर्रलदास अपने किसी पुण्य के प्रताप से पूज्य श्री के सत्संग में पहुँचे और उनको भी नवजीवन मिला। दिनांक १६ जनवरी १९७६ को शुक्रवार रात्रि को उन्होंने भी कई सत्संगी भाईयों के बीच अपना अनुभव बताते हुए कहा :

"ले, दूध पी ले!"

ऐसा कहकर मैंने एक बड़ा चाय का गिलास मंच पर सफेद चादर ओढे बैठे हुए दाढ़ी वाले बाबा के सामने किया। सोचा, अपने से और तो कुछ नहीं होता–इतना तो पुण्य करें, पर

'चुप रह! यहाँ बैठ जा और सत्संग सुन। शोर मत कर....'

मेरे से भी अधिक और रौबदार एवं अधिकार पूर्ण वाणी में प्रत्युत्तर सुनाई दिया बाबा का। सुनकर मैं तो दंग रह गया! आज तक मेरे मुंह पर ही मेरी बात काटने का साहस किसी ने नहीं किया था, क्योंकि ऐसा मैं भी अपनी गली का एक शेर था कि लोग मेरा सामना करते घबराते थे। पता नहीं उनकी वाणी में, उनके चेहरे पर कौनसा तेज था कि पुनः उनके सामने बोल नहीं सका और चुपचाप बैठे-बैठे मैंने पूरा सत्संग सुना।

उसके पश्चात तो आप जानते ही हैं कि मैंने आज

सारी बुराईयाँ छोड़ दी हैं। पूर्व किये गये असद्-कर्मों के प्रायश्चित-स्वरूप आज आप सबकी एवं आश्रम की कोई भी सेवा करने में मुझे बहुत आनन्द का अनुभव होता है। मुझे एक तरह से पुनर्जन्म मिला है। यदि समय पर स्वामीजी का आशीर्वाद नहीं मिलता, उनकी कृपा-दृष्टि नहीं होती मुझपर, तो न जाने आज तक मैं अपने जीवन को कितने गहरे पतन के गढे में धकेल चुका होता।

डूबते को किश्ती का सहारा

इसी प्रकार अजमेर का एक भाईश्री लालचन्द अपने जीवन से निराश अपनी अशांति को मिटाने के लिये महीने में करीब १५००-२००० रु. की शराब पी जाता था। पत्नी और सम्बंधी परेशान थे उसके इस दुर्व्यसन से। कई वर्ष शादी के पश्चात् व्यतीत हो जाने पर भी घरमें संतान नहीं हो रही थी। इससे उसकी और अधिक जीवन जीने की हिम्मत टूट चुकी थी।

इन्सां की अज्म और हिम्मत से जब दूर किनारा होता है,
तूफां में टूटी किश्ती का भगवान सहारा होता है।

उसके सद्भाग्य से पूज्यश्री के अजमेर में उसको दर्शन हो गए। पूज्यश्री उसके वास्तविक दर्द को समझ गए कि यह अपने दुःख को कम करने के लिये शराब का नशा करता है। मगर उसका नशा तो सुबह होते ही उतर जाता है।

शराब चढ़कर उतरने वाली,
पिलाई तो क्या पिलाई साकी ?
जो चढ़के इक बार फिर न उतरे,
वो मय पिला दे तो हम भी जानें !

वो मय मगर हरएक के पास तो होती नहीं ! कोई विरले फकीर ही उसके धनी होते हैं। उस ब्रह्मरस वाली मय का कुछ स्वाद पूज्यश्री ने उसे चखा दिया।

ब्रह्मरस का नशा ही कुछ ऐसा है कि उसके सम्मुख संसार के सारे रस फीके-फीके लगते हैं । पूज्यश्री की कृपा से उसके सारे दुर्व्यसन दूर हो गए। अब पुत्ररूप में एक संतान भी उसे प्राप्त हुई है । उसका आचरण सुधर गया है और अब वर्ष में एक बार १०-१५ दिन के लिये साधना करने आश्रम में पहुँच जाया करता है ।

कहते हैं, भगवानबुद्ध को भी एक क्रूर हत्यारा डाकू अंगुलीमाल मिला था जो उनकी हत्या को उद्यत था, मगर बुद्ध के दर्शन में ही कुछ ऐसा चामत्कारिक अनुभव उसे हुआ कि वह उनके चरणों में गिर पड़ा और उसका भी उद्धार हो गया । इस प्रकार की घटनाएं पहले पुस्तकों में पढ़ा करते थे, मगर आज तो इस प्रकार के प्रसंग यहाँ प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। विचित्र लीला है संतों की !

अनुपम आत्मिक-धन के धनी 'पूज्यश्री'

आखिर ऐसा क्यों होता है ? समाज की चोरी, डकैती,

क्रूरता अनैतिकता जैसे दुःसाध्य रोगों का उपचार जो बड़े-बड़े डाक्टर, बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक भी नहीं कर पाते, जिनके सुधार के नाम पर कई बार बिगाड़ ही अधिक होता है-ऐसे रोगों का उपचार बाहर से कंगाल दिखने वाले फकीर कैसे कर जाते हैं ? उनके पास ऐसी क्या वस्तु होती है कि जिसके कारण समाज की सभी व्याधियों से ग्रस्त क्रूर व्यक्ति भी बिना हथियार वाले उन संतों के सामने अपने हथियार फेंक देते हैं, अपनी क्रूरता भूल जाते हैं और भगवद्-भक्ति का मार्ग अपना कर श्रेष्ठ जीवन जीते हैं ? उनके पास कौनसा ऐसा धन होता है कि जिसके लिये बड़े बड़े धनपति, मिलमालिक और समाज के सुप्रतिष्ठित लोग भी आश्रम के बाहर अपनी गाड़ियाँ खड़ी करके घंटों उनके दर्शन के इन्तजार में बैठे रहते हैं और दर्शन पाकर धन्य धन्य हो उठते हैं ? ऐशो-आराम की समस्त सामग्री से सम्पन्न लोग भी ऐसा कौनसा अभाव उन्हें खटकता है कि ऐसे फकीर के सम्मुख जाकर कहते हैं-'स्वामीजी, मैं जीवन से तंग आ गया हूँ । मुझे शांति नहीं है । मुझे सहारा दो, नही तो में कुछ का कुछ अनुचित नहीं कर बैठूं कहीं।'

वस्तुतः संतों के पास वह वस्तु होती है जिसकी तुलना संसार के किसी भी पदार्थ से संभव नहीं है । वे उस आत्मधन के धनी होते हैं जिसको जाने बिना कोई कुछ भी करें-संसार की सारी सुख सामग्रियाँ बटोर लें तो भी सुखी नहीं हो सकता। और इसीलिये उनका इलाज अचूक

होता है। इसीलिये प्रकृति उनकी वाणी को नहीं टाल सकती। ऐसे उदाहरणों से संतों का आध्यात्मिक इतिहास भरा पड़ा है और इधर आश्रम में तो कईयों को इस प्रकार के उदाहरण सदैव देखने में आते रहते हैं।

दहेज की दुष्ट प्रथा से कईयों का छुटकारा

अभी भी कई लोभी माता-पिता शादियों में दहेज लिये बिना लड़के-लड़कियों की शादी नहीं होने देते। इस दहेज प्रथा को बंद करने के लिये कई नेताओं ने बहुत प्रयास किये हैं, फिर भी वह चालू है। कितने ही ऐसे आर्थिक दृष्टि से दीन परिवार इस कुप्रथा के कारण अपने लड़के-लड़कियों की शादी बड़ी उम्र होजाने पर भी नहीं कर पाने के कारण भीतर ही भीतर खून के आंसू बहाते रहते हैं। उनके दुःख को कौन समझ सकता है? मगर यहाँ कई उदाहरण ऐसे हैं कि जिसमें पूज्यश्री ने वर-वधु दोनों पक्षों को राजी करके बिना दहेज लिये शादियाँ करवाई हैं।

दीन-दुखियों को सहारा

कई परिवारों की ऐसी माताएं जो अपने-अपने पति के शराबखोरी, सिनेमा आदि की आदतें होने से पैसों के अभाव में आधे भूखे पेट अपने बच्चों को सुलाया करती थी और अपना दुख किसी के आगे रो भी नहीं सकती थी; पति की मार से भी भयभीत रहती थी-उनके आँसू भी आश्रम में आने पर पूंछे गए हैं। पूज्यश्री की कृपा से

उनके पति अपने दुर्व्यसन छोड़कर सन्मार्ग पर अग्रसर हुए हैं या यों कहो कि उन्हें होना ही पड़ा है, क्योंकि फकीरों के पास कुछ ऐसा ही अद्भुत दैवी संकल्प बल होता है।

ग्रन्थ योगवासिष्ठ में महर्षि वसिष्ठ कहते हैं :

"हे रामजी ! त्रिलोकी में ऐसा कौन है जो संत की आज्ञा का उल्लंघन कर सके।"

जिन्होंने भी शुद्ध हृदय से संत के सम्मुख जाकर प्रार्थना की है उन्हें तत्क्षण लाभ हुआ ही है। पूज्य श्री के दरबार में राजा से लेकर रंक, मालिक से लेकर नौकर, बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी को लाभ हुआ है और हो रहा है। धन्य है उनका विशाल और उदार हृदय !

पूज्यश्री अपने हृदय की ओर इशारा करके कहा करते हैं-

"भाई यहाँ तो दर्पण है। जो जैसी श्रद्धा की भावना लेकर आता है-जैसी इच्छा और संकल्प करके आता है, उसे ऐसा फल मिल जाता है। मैं कभी कुछ करता नहीं। फिर भी एक बात कहता हूँ कि मांग-मांग कर कब तक तुम चलाते रहोगे? किसी फकीर की सहायता से अपने अन्दर छिपे सबको प्रकाशित करने वाले उस आत्मदेव को जानकर स्वयं ही मालिक हो जाओ। दीन मत बनो। कामनाओं के पीछे भटक-भटक कर अपना जीवन मत खोओ।

दीनता को त्याग नर अपनो स्वरूप देख।
तू तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकासी है॥

मैं तो तुम्हें वह देना चाहता हूँ जिसके बाद कुछ मांगना शेष ही न बचें। परन्तु क्या करूँ? तुम लोग ईंट–पत्थर अथवा पुत्र आदि की मांगे लेकर आ जाते हो। जवेरी की दुकान पर शाक–भाजी खरीदने पहुँच जाते हो। मगर जब तक आत्मधन रूपी हीरा नही पाओगे तब तक जो भी पाओगे, सब एक दिन तो छोड़ना ही पड़ेगा।...इसलिये 'दुखों का समूल नाश करने का उपाय' सत्संग में से पकड़ो अर्थात् 'आत्म–साक्षात्कार' करो। बाकी तो सब यूं ही चलता रहेगा। पुत्र, पैसा, औषधि आदि तो डाक्टरों और सेठो से भी मिल जाएगा। फकीरों से असली धन 'शाश्वत्–धन' पाने का काम लो, तुच्छ और नश्वर पाने का नहीं। समझे कि नहीं...?"

इसका यह अर्थ नहीं कि केवल सांसारिक कामनाओं वाले लोग ही पूज्य श्री के पास आते हैं। साधक–वृत्ति के भी बहुत लोग आश्रम में आते हैं। और वैसे सांसारिक कामना वाले भी जो आए, पूज्यश्री की कृपा से वे भी बाद में साधक बन गए। आज बहुत बड़ा साधक–वर्ग पूज्य श्री के चहुँ ओर बढ़ता जा रहा है।

ज्ञान, भक्ति, योग–तीनों मार्गों के आचार्य

ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और योगमार्ग–तीनों ही प्रकार की प्रकृति के साधक पूज्यश्री के सांनिध्य का लाभ लेते हैं।

शक्तिपात् करके साधक की कुण्डलिनी शक्ति जागृत करने की योग की प्राचीन विधि बहुत समय से अरण्यों व पहाड़ों में रहने वाले योगियों के पास ही गुप्त एवं सुरक्षित

रही है। कई योग साधक वर्षों से कई प्रकार की तितिक्षा सहन करके भी कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने में समर्थ नहीं हो पाते, फिर भी यहाँ पूज्यश्री की कृपा से उनकी वह महामाया–शक्ति जाग्रत हो जाती है, फिर तो उनकी साधना को पंख लग जाते हैं। यह शक्ति जाग्रत होने से साधक को अतिन्द्रिय आनन्द की अनुभूति होती है, परन्तु प्रारंभ में कुण्डलिनी शक्ति जब जाग्रत होती है तो ऐसे–ऐसे बीभत्स परिवर्तन किसी–किसी साधक के शरीर में होने लगते हैं कि कई साधक तो घबरा उठते हैं और साधना छोड़ बैठते हैं–और इस प्रकार बाद में होने वाले अनुपम लाभ से वंचित रह जाते हैं। इसी लिये शास्त्रों में इस मार्ग में आगे बढने के लिये समर्थ गुरु अथवा मार्गदर्शक की नितांत आवश्यकता बतलाई गई है।

पूज्यश्री इस कुण्डलिनी-योग मार्ग के तो पूरे-पूरे आचार्य हैं। पूज्यश्री की कृपादृष्टि से एक ही साथ बिना स्पर्श किये शक्तिपात द्वारा हजारों व्यक्ति ध्यान की गहरी शांति का अनुभाव लाभ ले सकते हैं। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत हो जाने से विषय-वासनाओं का वेग कम हो जाता है और ब्रह्मचर्य की रक्षा को बहुत बडी मदद मिल जाती है। कई ऐसे साधक एवं साधिकाएं आज पूज्यश्री से सम्बंधित हैं जो पति–पत्नी होते हुए भी आपस में पति–पत्नी का व्यवहार न करते हुए वर्षों गुजार देते हैं। साधक के लिये आज समाज के सिनेमा व श्रृंगार के वासनायुक्त

वातावरण में इस प्रकार ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए साधना करना वस्तुतः दुस्तर कार्य है। मगर पूज्यश्री की कृपा से साधकों के लिये यह दुस्तर साधना कार्य अनायास ही सहज हो गया है।

साधारणतया 'आत्म-साक्षात्कार'-यह बहुत कठिन कार्य मानव मात्र के लिये माना जाता है, परन्तु तब जब हम भगवान बुद्ध एवं महावीर स्वामी जैसी महान् विभूतियों के अति तपस्यापूर्ण एवं एकाकी जीवन की ओर देखते हैं जो राजघराने को त्याग कर वैराग्य की दिशा में आगे बढ़े थे। मगर नानक अथवा कबीर जैसे तत्त्वज्ञ आत्मनिष्ठ संतों की ओर दृष्टि डालते हैं जो कि गृहस्थ होते हुए भी विरक्त थे, तब हम लोगों में एक प्रकार का आंतरिक विश्वास जागता है कि जब कबीर अथवा नानक जो सामान्य जनसमाज में से उठे थे और जिनके कमाल एवं श्रीचन्द व लक्ष्मीचन्द नामके पुत्र भी थे-तो हम क्यों नहीं ऊपर उठ सकते? हम भी उस साधना की चोटी पर पहुँच सकते हैं। पूज्यश्री भी साधना करके हममें से ही ऊपर उठे हैं। उनकी भी शादी हुई। उनके भी ६ वर्ष का एक 'नारायण' नामका पुत्र और ४ वर्ष की एक 'भारती' नाम की पुत्री है।

पूज्यश्री कहा करते हैं :

"साक्षात्कार न स्त्री को होता है न पुरुष को, न राजा को होता है न रंक को, न सेठ को होता है न नौकर को, न बालक को होता है न वृद्ध को, न विरक्त को होता है न गृहस्थ को। जब तक हम राजा-रंक, स्त्री-पुरुष, मालिक-नौकर, बड़े-छोटे, विरक्त या गृहस्थ बने हुए हैं तब तक वह होता ही नहीं। वह तो तभी होता है जब हम पूर्णतया मिट जाते हैं। अपना तुच्छ अहं जब हम भुला देते हैं और सर्वत्र व्याप्त उस एक में ही अपने को तादात्मय कर लेते हैं तभी उस ईश्वरी-रस का पान कर सकते हैं। क्योंकि:

'प्रेम गली अति सांकरी जां में दो न समाय।'

वहाँ या तो ईश्वर रहता है या आप। दोनों एक साथ नहीं रह सकते। आप जब मिट जाते हो, तभी ईश्वर प्रकट होता है। बस, वह मिटने की कला किसी फकीर से सीख लो-फिर तो साक्षात्कार आपके कदमों में है।"

शुकदेव सम नन्हा नारायण

होनहार गौरवर्ण बालक नारायण को देखते ही ऐसा लगता है कि अवश्य यह पूर्वजन्म का कोई योगी होगा और अपनी साधना को पूरी करने के लिये पुनः मनुष्य देह धारण कर इस भूतल पर आया है। वह नन्हा सा नारायण जब पद्मासन बांधकर ध्यान में बैठता है तब लगता है जैसे शुक देव महाराज बैठे हैं। उसका सौम्य मुख, बोलने का ढंग, चाल-ढाल और इतनी छोटी उम्र में भी किसी भी बात को तुरन्त समझ जाने की तीव्र बुद्धि आदि से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भविष्य में यह एक महान् व्यक्तित्व के रूप में मनुष्य समाज में भूले-भटकों का नेतृत्व

करेगा । सत्संगी बन्धु शुकदेवसम इस नन्हे नारायण को 'नारायण स्वामी' कहकर प्रेम से पुकारा करते हैं । बाल योगी नारायण स्वामी आश्रम में ही रहते हैं ।

महिला योग साधना आश्रम

नारायण स्वामी की मातुश्री 'लक्ष्मीदेवी' एक महिला योग साधना आश्रम का संचालन करती हैं ।

मातुश्री लक्ष्मीदेवी का स्वभाव बड़ा ही नम्र, सरल एवं उदार है । साधना की अच्छी भूमिका पर वे आरूढ हैं । जब पूज्यश्री साधना हेतु गृहत्याग कर चले गए थे, उन दिनों भी उनकी साधना में अमित बल था । घर में कोई विशेष कार्य आरंभ करना होता था तो कई बार उनसे पूछा जाता था । वे यदि 'हाँ' कह देती तो कार्य सफल होता था और यदि उनके मुख से 'ना' निकल जाता, फिर भी वह कार्य किया जाता तो कार्य सिद्ध नहीं होता था और हानि होती थी । इस प्रकार के कई प्रसंग उस समय बना करते थे । यह उस समय अपने स्वामी 'पूज्यश्री' के लिये उनके द्वारा किये गये सतत चिंतन, धैर्य एवं साधना का ही चमत्कार था । आज भी वे साधना दृष्टि से कई माताओं एवं बहनों के लिये एक श्रेष्ठ आदर्श हैं ।

नारायण स्वामी की छोटी बहन 'भारती' इस महिला आश्रम में अपनी मातुश्री के पास रहती हैं । महिला आश्रम में भी पानी बिजली एवं साधना के लिये कमरों आदि की पूरी सुविधाएं उपलब्ध हैं ।

लोक-कल्याणार्थ आश्रम के विविध कार्यक्रम

हर वर्ष आश्रम में मकरसंक्रांति (उत्तरायण) एवं चेटी-चण्ड (वरुण अवतार-झूलेलाल, चैत्र सुद २) दो उत्सव मनाए जाते हैं जिसमें हजारों की संख्या में लोग एकत्रित होते हैं । उस दिन सबके भोजन के लिये आश्रम की ओर से ही भण्डारा होता है । इन उत्सवों में आगे के अथवा पीछे के ४ या ५ दिन जिज्ञासु साधकों के लिये योग साधना शिविर का भी आयोजन रहता है, जिसमें पूज्य श्री स्वयं उपस्थित रहते हैं । इन दिनों में साधकों के बीच जिस आत्मीयतापूर्ण व्यवहार का सर्जन होता है, वह अतुलनीय है।

इन उत्सवों के साथ साथ कभी-कभी दुर्व्यसनों से बचने के लिये प्रदर्शनी, युवकों की शारीरिक योग्यता वृद्धि को प्रोत्साहन देने के लिये कुश्ती-दंगल के प्रदर्शन, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिये संत-सम्मेलन भी होते रहते हैं ।

आश्रम में आकर पूज्यश्री की कृपा से जादू-होने, डोरे-धागे करने वालों से त्रस्त लोग सदैव केलिये मुक्त हो गए हैं । कई आत्म-बल से हीन और मानसिक कमजोरी से ग्रस्त लोगों को नवजीवन मिला है । मगर दूसरी ओर सीधे-सादे लोगों के भोलेपन का फायदा उठाकर अपना उल्लू सीधा करने वाले जादू-टोने और टोटके करने वालों का धंधा मंद पड़ जाने से वे आश्रम के प्रति बड़े वैर भाव से भर उठे और कई प्रकार से आश्रम को एवं पूज्यश्री को

बदनाम करने पर तुल गए । अभी भी उनके कुप्रयास जारी हैं, फिर भी जैसा कि कहा गया है 'सांच को आँच नहीं' आश्रम की प्रतिष्ठा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है ।

इन दो प्रमुख उत्सवों के साथ-साथ रक्षाबन्धन, दीपावली, होली आदि पर्वों पर भी आश्रम में इतना भक्त-समुदाय एकत्रित हो जाता है कि ये पवित्र दिन भी एक प्रकार से आश्रम के उत्सवों का ही रूप लेते जा रहे हैं ।

आश्रम के कार्यक्रमों में 'गुरु-पूर्णिमा' का दिन भी विशेष एवं महत्वपूर्ण उत्सव के रूप में मनाया जाता है । इस दिन प्रायः सभी स्थानों में फैले हुए साधक एवं भक्त गण आश्रम में पूज्यश्री के पूजनार्थ एवं दर्शनार्थ पहुँच ही जाते हैं । पूज्यश्री भी उस दिन भक्तों का प्रेम देखकर भाव विभोर हो उठते हैं और समझो अपना आनन्द का खजाना ही उस दिन सबके लिये खोल देते हैं । फिर तो आश्रम में वह आनन्द का रंग जमता है कि उसमें कई नये आए हुए, अथवा अपने को काफी समय से बचाये हुए लोग भी ईश्वरी-रंग से रंगे बिना नहीं रहते ।

इन विभिन्न प्रकार के उत्सव-कार्यक्रमों के अतिरिक्त सप्ताह में दो बार रविवार एवं बुधवार को नियमित सत्संग होता है, जिस में आने वालों का एक बहुत बड़ा साधक-वर्ग खड़ा हो गया है । सत्संग के साथ ध्यान एवं कीर्तन भी होता है । भक्त लोग जो प्रसाद लाते हैं वह पूज्यश्री

सत्संग के बाद खुले हाथों लुटाते हैं । उस प्रसाद की छीना झपटी का दृश्य भी बड़ा भावपूर्ण होता है ।

कुछ चामत्कारिक घटनाएँ

कभी-कभी भक्तों के बहुत आग्रह से पूज्यश्री का बाहर भिन्न-भिन्न स्थानों पर दौरा होता है । उस समय विशाल जनसमूह के बीच कुछ ऐसी चामत्कारिक घटनाएं घट जाती हैं, जिससे यह स्पष्ट भास होता है कि प्रकृति संतों की सेवा में कितनी तत्पर होती है !

बादल भी उनकी आज्ञा में

एक बार पूज्यश्री सिद्धपुर में एक विशाल जनसमूह में सत्संग कर रहे थे । थोड़ी ही देर में आकाश काले-काले बादलों से घिर गया । लोग मन ही मन घबराने लगे कि अब घनघोर जलवृष्टि होगी और हम लोग घर पहुँचने से पूर्व ही भीग जाएंगे । हल्की-हल्की बूंदाबांदी भी प्रारंभ हो गई । इतने में पूज्यश्री ने कहाः

"तुम लोग अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहो, बरसात बन्द हो जाएगी ।"

पूज्यश्री का इतना कहना था कि बरसात बन्द हो गई ।

जब सत्संग पूरा हो गया तो पूज्यश्री ने सबको सचेत करते हुए कहा :

"अब तुम लोग जितना जल्दी हो सके घर पहुँच जाओ, क्योंकि अब मेघराजा पूरे जोर से बरसने की इंतजार में है ।"

इतना सुनते ही सब लोग अपने-अपने घर की ओर दौड़ पड़े । उसके बाद ऐसी मूसलाधार बरसात पड़ी कि बाद में दो दिन तक लगातार चलती रही ।

इसी प्रकार अहमदाबाद में 'भाई प्रभाराम सोसायटी' में सत्संग करते हुए पूज्यश्री के संकेत मात्र से बरसात का आगमन हुआ । बरसात के समय सब लोग अपने अपने स्थान पर डटे रहे । एक भी वहाँ से हटा नहीं ।

अल्पवृष्टि या अतिवृष्टि जैसे जिन प्राकृतिक प्रकोपों से भयभीत लोग जहाँ देवताओं के आगे अपने रक्षण के लिये सिर झुकाते हैं वहीं प्रकृति फकीरों के सम्मुख हाथ बांधे खड़ी रहती है । इसीलिये तो कहा है कि-

लोग जहाँ सिर झुकाते हैं
आशिक वहाँ कदम रखते हैं ।

चरण-स्पर्श का चमत्कार

इसी प्रकार सन् १९७३ में गुजरात में भीषण वर्षा से साबरमती नदी अपनी आज तक की सब सीमाओं को तोड़कर बहने लगी थी । उसी कारण आश्रम के चारों ओर की नीची जगह पर पानी भर गया था । जिधर देखो उधर जल ही जल नजर आता था । उस समय पूज्यश्री ने जमीन पर एक रेखा खींची और कहा कि बस, पानी के लिये यह लक्ष्मण रेखा है । इससे आगे पानी नहीं आएगा । रेडियो द्वारा बार बार यह समाचार प्रसारित हो रहा था कि साबरमती का पानी २३ फुट तक पहुँच गया है और

जल्दी ही ३० फुट तक पहुँचने की आशंका है । उस समय पूज्यश्री ने सहज भाव से नदी के पानी में अपना पांव डुबो दिया । नदी उनके संकेत को शीघ्र ही समझ गई । उसके तुरंत बाद नदी का पानी उतरना शुरू हो गया और फिर कभी इतना ऊपर नहीं आया ।

अद्भुत-लीला

एक बार अहमदाबाद में वासुदेव कॉलोनी में पूज्यश्री का सत्संग-कार्यक्रम था । पूरा भवन भक्तों से खचाखच भरा हुआ था । फिर भी इतनी शांति थी कि एक सुंई गिर पड़े तो उसकी भी आवाज सुनाई पड़ जाय । इतने में एक भौंरे जैसा जन्तु उड़ता हुआ कहीं से एकाएक आया और एक बहन के चेहरे के आसपास बड़ी जोर से गुंजार करते हुए मंडराने लगा । आखिर बहन को उसके कारण वहाँ से हटना ही पड़ा । और ज्योंही उस बहन के उठने से स्थान खाली हुआ त्योंही उसी स्थान में ऊपर से घूमता हुआ बिजली का पंखा छत से अलग होकर गिर पड़ा । किसी को उसके गिरने से कोई हानि नहीं हुई । एक बड़ी दुर्घटना होते होते बच गई । जैसे वह भौंरे जैसा जन्तु उस बहन को दुर्घटना से बचाने लिये ही वहाँ आया था ।

जहाँ पूज्यश्री की उपस्थिति हो-मजाल है वहाँ प्रकृति किसी प्रकार की दुर्घटना का सर्जन कर जाय । जिसकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता उस सर्व-व्यापक परम तत्त्व से ऐसे सन्तों का पूरा-पूरा तादात्मय

होता है। फिर यह सोचना ही व्यर्थ है कि वह भौंरे जैसा जन्तु कौन था और कैसे आया ? इसीलिये तो कहा गया है:

"जाको राखे सांईयां, मारि सके न कोय।"

बापू, आपने मुझे बचा लिया

इसी प्रकार की एक घटना आश्रम में घटी थी। एक बार शाम के समय एक व्यक्ति सत्संग के बीच में से उठ कर जाने लगा। पूज्यश्री ने उससे कहा, 'अभी मत जाओ, बाद में जाना।' तो वह बैठ गया, मगर एक मिनट बाद ही वह फिर उठ खड़ा हुआ। पूज्य श्री ने उसे फिर बिठा दिया। मगर वह कोई नया ही आया था। उसे लगा कि मैं कोई किसी का गुलाम हूँ जो कहने में चलूँ ? मेरी इच्छा से आकर बैठा था, अब मेरी इच्छा से जाऊँगा, मुझे कौन रोक सकता है ? ऐसा समझ कर बडी ऐंठ के साथ वह उठा और बोला कि मेरा रिक्शा बाहर खड़ा है और अब मैं जाता हूँ। उसी समय पूज्यश्री बहुत ही तीव्र आवाज में बोल उठे, 'बैठ जा चुपचाप !' फिर पूज्यश्री को लगा कि यह नया नया आया है, उसे यह सब सहन नहीं होगा, तो आवाज में नरमाई लाकर बोले:

"बच्चा ! तू संतों की बात को समझ नहीं पा रहा है। मैं कहता हूँ, बैठ जा ! अभी तेरा जाना ठीक नहीं हैं। तेरे ही हित के लिये कह रहा हूँ। फिर भी आजमाना हो तो चला जा, मैं नहीं रोकता...।"

उस समय भी वह समझ तो नहीं पाया पूरी बात, फिर भी पास में बैठे लोगों ने उसे हाथ पकड़ कर बिठा दिया। थोड़ी देर बाद सत्संग पूरा हुआ। प्रसाद लेकर लोग चले गए।

मगर दो-तीन दिन बाद ही वह व्यक्ति आश्रम में आया और पूज्यश्री के चरणों में गिरकर फूट-फूट कर रोते हुए कहने लगा:

"बापू, आपने मुझे बचा लिया, नहीं तो मेरी नादानी तो क्षमा योग्य भी नहीं थी। मैं उस दिन चला ही जाता तो इतने बड़े नुकसान में उतरने वाला था कि बाद में सम्हल भी नहीं पाता ! मगर बापू..., आपने मुझे बचा लिया। बापू...., मैं आपको समझ नहीं पाया था।"

शायद आगे होने वाली किसी दुर्घटना से वह बच गया था-इस बात का उसे अहसास हो गया था। अब वह हर सप्ताह आश्रम में आया करता है और जब-जब भी बापू के दर्शन करता है, तब-तब पूज्य श्री की करूणा का स्मरण कर उसकी आँखें गीलीं हो जाती हैं।

अमाप करुणामय पूज्यश्री

वस्तुतः पूज्यश्री की करूणा अमाप है। जिस प्रकार माँ बच्चे को समझाकर उसे दवा पिलाना चाहती है, मगर नहीं पीये तो डांट-डपट या थप्पड़ मार कर भी पिला देती है, क्योंकि उसी में बच्चे का हित छिपा है, उसी प्रकार

पूज्य श्री कई बार कुछ भक्तों के साथ न चाहते हुए भी कठोर व्यवहार करते हैं, मगर उसमें उनकी अपार करूणा ही छिपी होती है ।

पूज्यश्री का अद्भुत व्यक्तित्व

लगभग सभी भक्तों एवं साधकों का यह अनुभव है कि पूज्यश्री के पास आते ही उनको ऐसा लगता है जैसे वे मां की गोद में पहुँच गए हों । उनके समीप पहुँचते ही लोगों के दुःख, कष्ट, चिन्ता, शोक सब भाग खड़े होते हैं और पूज्यश्री के अमृत वचन सुनते हुए कितना समय बीत गया-इसका भी भान उन्हें नहीं रह पाता ऐसे तन्मय हो जाते हैं । लोग भूख प्यास भूलकर पूज्यश्री की अमृतवाणी का पान करते रहते हैं । सभी को आश्रम के पवित्र वातावरण में ऐसा लगता है जैसे साक्षात् ब्रह्मलोक में ही बैठे हैं । पूज्यश्री की अमृतवाणी का कितना ही पान करो, उनका कितना ही दर्शन करते रहो, मगर मन नहीं भरता ।

पूज्यश्री के व्यक्तित्व में एक ऐसा अलौकिक आकर्षण हैं कि जिसने भी एक बार उनका दर्शन कर लिया, वह फिर दुबारा आता ही है । न मालूम उनके दर्शन मात्र से उसके हृदय में किस अगोचर आनन्द की अनुभूति होती है कि जिसे फिर-फिरसे जगाने के लिये वह बार बार दर्शनार्थ आता ही रहता है ।

गुजरात की एक महत्वपूर्ण पत्रिका 'धर्म संदेश' जिस की लगभग ७० हजार प्रतियाँ छपती हैं के एक लेख में

उस के एक पत्रकार ने पूज्य श्री से प्रत्यक्ष भेंट करने के बाद अपना अनुभव बताते हुए लिखा है-

"जो एक बार स्वामीजी के दर्शन के लिये आ जाता है उसे अपने हृदय का कब्जा स्वामीजी को सोंपना ही पड़ता है ।"

—'धर्मसंदेश' दीपावली विशेषांक १९७७

कई लोग अपने परमार्थ के लिये न जाने कितने मंदिरों और तीर्थों में भ्रमण करते हैं, मगर वर्तमान में चलते-फिरते संत-महात्मा रूपी ऐसे तीर्थों को न समझ कर और उनकी महिमा न जानकर तीर्थाटन के वास्तविक लाभ से वंचित रह जाते हैं ।

भागवत् में भगवान श्री कृष्ण यज्ञ के समय संतों के पैर धोते हुए कहते हैं:

" जिन्होंने बहुत थोड़ा तप किया है और जो केवल प्रतिमाओं में ही देव दृष्टि रखते हैं (अर्थात् भगवान की सर्वव्यापकता को नहीं समझते) उनको आप संतों के दर्शन, प्रणाम और पूजन का सुअवसर प्राप्त नहीं होता ।"

(स्कंध १०, अध्याय ८४, १०)

"जलमय तीर्थ-ये वास्तविक तीर्थ नहीं हैं । मिट्टी-पत्थर के देव-ये वास्तविक देव नहीं हैं । साधुजन ही प्रधान देव तथा तीर्थ हैं । जलमय तीर्थों का सेवन बहुत लम्बे समय के बाद मनुष्य को पवित्र करता है, जबकि साधुजन केवल दर्शनमात्र से कृतार्थ कर देते हैं । ऐसे ज्ञानी

महात्मा केवल एक मुहूर्त में अज्ञान का सम्पूर्ण नाश कर देते हैं ।"

(स्कंध १०, अध्याय ८४, ११)

"जिस पुरुष को वात, पित्त और कफ इन तीन धातुओं से बने मुर्दा शरीर में आत्मबुद्धि है, जो स्त्री–कुटुम्ब को स्वयं का मानते हैं, जिन को जड़ प्रतिमाओं में देहबुद्धि है तथा केवल जलमें तीर्थबुद्धि है और जिनकी ज्ञानी महात्माओं में पूज्य बुद्धि नहीं-वे साक्षात् गधे के समान हैं ।"

(स्कंध १० अध्याय ८४, १३.)

भागवत् के श्लोक यह बताते हैं कि जिन को मूर्ति-पूजा से आगे बढ़ना हो और जिनको ईश्वर का वास्तविक स्वरूप जानने की इच्छा हो उनको ज्ञानी महात्माओं का संग करना चाहिये ।

अमाप आत्मिक प्रेम के स्रोत–'पूज्यश्री'

पूज्यश्री के चहुँ ओर एक ऐसा प्रेममय आत्मीयतापूर्ण वातावरण हर समय रहता है कि आने वाले साधक एवं भक्तगण निस्संकोच अपने अन्तर में वर्षों से दबे हुए दुःख, शोक और चिन्ताओं के पोटले खोल देते हैं और हलके हो जाते हैं । कुछ लोग कहते हैं–

"बापू ! आपके पास न मालूम ऐसा क्या जादू है कि हम–फिर फिर से आए बिना नहीं रह सकते ।"

पूज्य श्री कहते हैं:

"भाई, मेरे पास ऐसा कुछ भी गुप्त जादू या मंत्र नहीं है । कहो तो वह तुम्हें भी सिखा सकता हूँ । वह मंत्र यह है:

'वशीकरण मंत्र है प्रेम को'

बस इतना ही वह मंत्र है ।

'सबको प्यार की प्या...स !' सब को प्रेम चाहिये । वह प्रेम मैं लुटाता हूँ । सब कुछ पहले ही लुटा चुका हूँ, इसलिये मुझे ऐसा अखूट प्रेम का धन 'आत्म–धन' मिला है कि वह कितना ही लुटाओ, खूटता (समाप्त) नहीं । बाकी लोग अपने अपने स्वार्थ को नाप–तौल कर प्रेम करते हैं । इधर तो कोई स्वार्थ है नहीं । अपने तो सारे स्वार्थ उस परम प्यारे प्रभु के स्वार्थ के साथ एक कर दिये हैं । जिसके हाथ में सबके प्रेम और आनन्द की चाबी है उस प्रभु को हमने अपना बना लिया है, इसलिये मुक्तहस्त से प्रेम बांटता रहता हूँ । आप भी यह कला सीख लो सब को निस्वार्थ भाव से–आत्म भाव से देखने और प्रेम करने की ।"

मगर सभी यह जानते हैं कि यह इतना सरल नहीं है । जिसने अपने सारे स्वार्थों की और अपने झूठे अहं की होली जलादी हो, वही और केवल वही यह निस्वार्थ प्रेम बांटने के अधिकारी होते हैं । दूसरे तो साधारण ऋद्धि–सिद्धियों में ही फंसकर रह जाते हैं ।

माया से पार होना कोई सरल कार्य है ? अपने सामर्थ्य से विशाल वाहिनी सेनाएँ सजाकर राजा बन जाय, सैकडों–हजारों ग्रंथ पढ़कर बड़े पण्ड़ित बन जाय, व्रत नियम उपवास आदि करके और यज्ञ जप तप आसन प्राणायाम आदि करके बड़े बड़े चमत्कार दिखा दे, परन्तु माया के पार तो जो अपने अहं रूपी सिर का संपूर्ण समर्पण करता है वही पहुँच पाता है । तभी तो कहा है:

चढ गजराज चतुरंगिणी समाज संग
जीत क्षितिपाल सुरपाल में सजत हैं ।
विद्या अपार पढ, तीर्थ अनेक कर
यश और दान बहुभांति सो करत है ।
तीन काल में नहाएं इंद्रियको बस लाए
करें उपवास विषय–वासना तजत है ।
जोग और यज्ञ जपतप अनेक करि
बिना भगवन्त भक्त बहु ना तरत है ।
जलें गढें बूड़े उड़ जाए
पर काया परवेश कराए ।
और पराए मन की जाने
चलकर जाए तहाँ मनमाने ।
भूलें जहाँ चतुर और ज्ञानी
उनको तजे भक्त तृण जानी ।

इन सब यश–प्रतिष्ठा के साधनों के चाह की होली जलाकर ही कोई सच्चे अर्थों में भक्त या संत बन सकता है और उसी के प्रेम में वह दैवी आकर्षण हो सकता है । पूज्यश्री के पास वही प्रेम बंटता रहता है । यही कारण है कि अहमदाबाद रेल्वे स्टेशन से करीब १३ किलोमीटर दूर आश्रम होने पर भी मणीनगर, सरदारनगर, कुबेरनगर ठक्करनगर, कृष्णनगर, कालुपुर, खोखरा, पालड़ी, नारणपुरा, नारायणपुरा, उस्मानपुरा, जमालपुर, चमनपुरा, असारवा, साबरमती और धर्मनगर आदि सभी बड़े बड़े विस्तारों में फैले हुए विशाल अहमदाबाद शहर के अन्दर और बाहर से सत्संगी बंधु हर बुधवार व रविवार को बस, स्कूटर, रिक्शा अथवा साईकिल आदि साधनों द्वारा आश्रम में पूज्यश्री के दर्शनार्थ एवं अमृत वाणी का पान करने बहुत बड़ी संख्या में पहुँच जाते हैं ।

जब पूज्यश्री का शहर से बाहर के स्थानों पर दौरा होता है तब इस प्रकार सप्ताह में दो बार नियमित आने वाले सत्संगी बन्धुओं के हृदय–कमल मुर्झा जाते हैं । पूज्य श्री के बाहर पधारते समय का विदायी–दृश्य भी बड़ा ही कारुणिक बन जाता है । विशेषकर मार्च–अप्रेल में २–३ महीने के लिये पूज्यश्री जब आबू–हरिद्वार और हिमालय की तरफ पधारते हैं उस समय का दृश्य तो इतना भावपूर्ण होता है कि शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति बचता हो जिसकी आँखें गीली न हो जाती हों । जब तक पुनः

बापू लौट कर नहीं आएंगे तब तक का समय किस प्रकार उनके बिना काटेंगे-इस प्रकार की विरहपूर्ण कल्पनाएं हरेक के हृदय में उठती रहती हैं।

भगवान श्री कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियाँ उनसे कहती हैं कि हे उद्धवजी, हमारे पास कोई दस-बीस मन तो हैं नहीं, एक ही है और वह भी मन मुरारी कृष्ण ले गए हैं:

उधो! मन नाहीं दस बीस
एक हुतो सो गयो श्याम संग
को अवराधे ईश?
उधो मन नाहीं दस बीस। (सूरदासजी)

पूज्य श्री जब बाहर होते हैं तब पूज्यश्री के लिये इसी प्रकार की विरहपूर्ण वार्ताएं सत्संगी भक्तों के बीच होती है। एक प्रकार से वृन्दावन की वह प्राचीन झांकी मूर्तरूप में यहाँ खड़ी हो जाती है।

वस्तुतः यह विषय ही ऐसा है कि इसका वर्णन यानी पूज्यश्री और भक्तों के बीच जो श्रद्धा और प्रेम का सम्बंध है उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। यह तो जिसको लगी हो वही जाने। तभी तो किसी प्रभु भक्त ने कहा है:

इश्के हक का लुत्फ क्या समझे दिले दुनिया परस्त!
लज्जते अदरक भला क्या मेंमना से पूछिये॥

अर्थात् उस प्रभु प्रेम का आनन्द दुनियादारी में फंसा

आदमी नहीं समझ सकता। बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद! अगोचर वस्तुओं के ज्ञान का आनन्द उजड्ड व अज्ञानी लोग क्या समझे?

संत निष्क्रिय या परम सक्रिय

पूज्यश्री कई बार कहा करते हैं:

"भाई हम तो कभी कुछ नहीं करते। फुर्सत भी नहीं है और करने को भी कुछ नहीं है।"

कई अल्प बुद्धि लोग इन वचनों को नहीं समझ पाते और पूज्यश्री अथवा उन जैसे अन्य तत्त्वनिष्ठ महापुरुषों को निष्क्रिय मान लेते हैं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे किसी बड़ी फेक्ट्री में मिट्टी-पत्थर उठाने वाले को सक्रिय मान लिया जाय और सारी फेक्ट्री का संचालन जिस के छोटे से परन्तु महत्वपूर्ण मस्तिष्क द्वारा होता है उस मैनेजर को निष्क्रिय मान लिया जाय। पूज्यश्री का यह कथन कर्ताभाव के अभाव का द्योतक है। यह संतों की महान् सरलता है। जो कुछ होता हुआ दिखता है उसे ही यदि करना या क्रिया मान लिया जाय तो यह तो एक बहुत ही स्थूल दृष्टि हुई। यह तो उस तत्त्व कीओर से आँख मूंद लेना हुआ कि जिसकी प्रेरणा से यह सब चराचर जगत चलायमान है-गतिमान है। ईश्वरी तत्त्व अर्थात् आत्मभाव में स्थित कोई भी महापुरुष कभी यह नहीं कहते कि 'मैंने यह किया' या 'मैं करता हूँ'। इसलिये स्वामी रामतीर्थ

तो जो कुछ भी करते या देखते थे तो कहा करते, 'राम ने ऐसा किया' या 'राम ने यह देखा'....मैंने नहीं ।

जिनका अहं गल गया है, जो भीतर से मिटे होते हैं, जिनका देहध्यास विसर्जित हो चुका है—वास्तव में तो वे ही महापुरुष कहलाने के योग्य हैं और उन्हीं के द्वारा विश्व में महान कार्यों का सर्जन होता रहा है। स्वामी विवेकानन्द ने १८ नव. सन् १८९६ को लन्दन में दिये गए अपने प्रवचन में इसी बात की ओर बड़े ही उत्तम ढंग से प्रकाश डालते हुए कहा था:

"लोग मूर्ख के समान एक और मत की पुष्टि किया करते हैं कि यदि हम अपने इस क्षुद्र 'मैं' पन को भुला दें तो जगत में किसी प्रकार की नीति परायणता नहीं रहेगी, मनुष्य जाति को कुछ भी आशा—भरोसा न रह जायगा । मानो जो ऐसा कहते हैं वे समग्र मानव जाति के लिये सदा प्राणोत्सर्ग ही करने के लिये तैयार हैं ।...ये सब लम्बी चौड़ी बातें हैं। इन सब बातों में कुछ न कुछ स्वार्थ छिपा रहता है । विश्व के इतिहास में यह स्पष्ट है कि जो इस क्षुद्र 'मैं' को एकदम भूल जाते हैं वे पुरुष ही समाज के सर्वोत्तम हितैषी हैं. और लोग जितना अपने (मैं पने) को अधिक भूल जाएँगे उतने ही वे अधिक परोपकारी बन सकेंगे । उनमें से पहले वालों में स्वार्थपरता है और दूसरे वालों में निःस्वार्थपरता । इन छोटे छोटे भोग—सुखों में आसक्त रहना और यह सोचना कि ये ही चिर

स्थायी हैं, घोर स्वार्थपरता है । ऐसी मनोवृत्ति सत्यानुराग अथवा दूसरों के प्रति दयालु भाव के कारण नहीं होती—इसकी उत्पत्ति का एक मात्र कारण है घोर स्वार्थपरता । दूसरे किसी की ओर दृष्टि न रखकर केवल अपनी ही भोगवृति के भाव से इसका जन्म होता है । कम से कम मुझे तो यही जान पड़ता है । संसार में मैं प्राचीन महापुरुष और साधुओं के समान चरित्र बलशाली व्यक्ति और देखना चाहता हूँ—वे एक क्षुद्र पशु तक के उपकारार्थ सौ—सौ जीवन त्यागने के लिये तैयार थे । नीति और परोपकार की क्या बात करते हो ? यह तो आजकल की बेकार की बातें हैं ।"

कई लोग तो अपने क्षुद्र अहंपने को मिटाना नहीं चाहते और ऊपर से समाजसेवी, परोपकारी और बड़े सुधारक बन जाते हैं जबकि भीतर तो उनके अपनो यश वृद्धि और मान सम्मान पाने की तीव्र वासना जोर मार रही होती है । मौलिक सत्य को ठुकराकर अपने क्षुद्र अहं की तृप्ति में लगे हुए ऐसे लोगों के लिये तो स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे:

"हमारा महात्मापन, सुधारकपन, सम्मान, पद, सम्बंध सबका सब गत रात्रि के स्वप्नों, बीते हुए जन्मों, मेवाकारों, संध्या के प्रेतों और रोगी मस्तिष्क के विचारों के वैताल (कल्पित भूतपिशाच) के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । जब हम राम, ईश्वर के प्रतिकूल (Out of tune) हो जाते हैं, तब हमें कोई मार्ग नहीं दीखता, हम दैवी विधान

से च्युत होते हैं–और हमें घोर दुःख उठाना ही पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं, तब ठीक उपाय, ठीक प्रवृत्ति, ठीक प्रवाह आप ही आप हमारे हृदय में उठते हैं, और हमें धन–सम्पत्ति, भूप्रदेशों, पर्वतीय दृश्यों, शांति, समृद्धि और पवित्रता के निर्झरों, स्रोतों के पास पहुँचाते हैं। अथवा यों कहना चाहिये कि हमारे भीतर आनन्दमय तेज (ज्ञानप्रकाश) जीवन और प्रेम हमारी ओर स्वयमेव दौड़ते हैं।"

स्वामी रामतीर्थ और आगे कहते हैं:

"यदि हम देहाभिमान को त्याग करके साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर के भीतर रहने दें तो बुद्ध भगवान या हजरत ईसा हो जाना उतना ही सहल है जितना कि निर्धन पॉल (Pole) बने रहना। एक ही म्यान में हम दो तलवारें नहीं रख सकते। यदि हम लोग बाहर से प्राप्त हुई निन्दा–स्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित कर लें, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जायँ, यदि जीतना और विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हों, यदि सत्य के उपदेश की अपेक्षा स्वयं सत्य बनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगाएं, यदि हम अपने कार्यों के लिये उतना ही न्यून श्रेय लेकर कार्य किया करें जितना कि सूर्य सर्वदा चमकने में लेता है तो ईश्वरों के भी अधीश्वर, स्वामियों के भी परम स्वामी हम हो सकते हैं।"

स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ जैसे महापुरुषों की कर्म के प्रति जो सूक्ष्म और पैनी तथा वास्तविक दृष्टि

है वह जनसाधारण के पास न होने से ही कई लोग तत्त्व-निष्ठ महापुरुषों को भी जो कि वास्तविक अर्थों में परम सक्रिय हैं निष्क्रिय मान लेते हैं। यहाँ भूल हो जाती है उन्हें पहचानने में। और जिनसे ऐसी भूल नहीं होती वे तो उनका सांनिध्य प्राप्त कर बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं।

इसलिये ऐसे महापुरुष जब कहते हैं 'भाई, हम कभी कुछ नहीं करते' तो उसका भावार्थ समझना चाहिये।

ऐसे महापुरुष कभी कुछ नहीं करते, मगर उनकी उपस्थिति मात्र से ही वह सब कुछ हो जाता है जो करने का अथक प्रयत्न करने पर भी मनुष्य नहीं कर पाता। सूर्य कभी नहीं कहता कि मैं लोगों को जगाता हूँ या बीमारियाँ दूर करता हूँ या पानी से भाप के बादल बनाकर वृष्टि करता हूँ और अवनितल को तृप्त करता हूँ। मगर यह सब जानते हैं कि ये सभी अच्छे कार्य भगवान भास्कर के उदय हुए बिना नहीं होते। तो सूर्य की उपस्थिति मात्र से ही ये सारे परिवर्तन होते हैं, सूर्य को करना कुछ नहीं पड़ता।

इसी प्रकार उस आत्मभाव में–ईश्वरी भाव में स्थित महापुरुष भी कभी कुछ करते हुए नजर नहीं आते, मगर उनकी उपस्थिति से सहज ही कई शुभ कार्य होते रहते हैं। जो जिस भाव से उनके समीप जाता है यदि उसका भाव शुद्ध हुआ तो अवश्य उसे वैसा फल मिलता है। इसी को लोग चमत्कार कहते हैं। चमत्कार इसीलिये कि मनुष्य की

छोटी तार्किक बुद्धि में वह बात समझ में नहीं आती अन्यथा आध्यात्मिक क्षेत्र में तो उसका भी पूरा विज्ञान है।

वस्तुतः ऐसे संतों के कारण ही इस पृथ्वी पर रस टिका है। जिस दिन ऐसे महापुरुषों का लोप होगा उसी दिन यह पृथ्वी रसातल में चली जाएगी-ऐसा स्वामी विवेकानन्द ने कहा है।

जगत में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिससे ऐसे महापुरुषों की तुलना की जा सके।

शिवाजी महाराज के गुरु समर्थ रामदास स्वामी अपने ग्रंथ दासबोध में कहते हैं।

"सूर्योदय होने से अंधकार का नाश हो जाता है, परन्तु सूर्यास्त के समय फिर से अंधकार घिर जाता है। परन्तु हे सद्‌गुरुदेव, आप शिष्य के अज्ञान का समूल नाश करके उसे जन्म मरण के बन्धन से सदैव के लिये मुक्त कर देते हैं। फिर उसके हृदय में अंधकार नहीं आता। पारस भी लोहे को सोना बना सकता है पर पारस नहीं बना सकता, परन्तु आप की कृपा से शिष्य भी सद्‌गुरु बन जाता है, इसलिये सद्‌गुरु को पारस की उपमा भी शोभा नहीं देती। सद्‌गुरु को सागर की उपमा दें तो सागर अत्यंत खारा और सद्‌गुरु तो अमृत मोक्ष स्वरूप अत्यंत मधुर होते हैं। यदि उन्हें क्षीर सागर कहें तो वह भी कल्पांत में नाशवान है, जबकि सद्‌गुरु सदा शाश्वत है। उन्हें सुमेरु

पर्वत की उपमा दें तो वह जड़ और कठोर पाषाणयुक्त है, जबकि सद्‌गुरु दीनों के लिये अत्यंत कोमल हैं। धैर्य और सहनशीलता के लिये यदि पृथ्वी से तुलना करें तो पृथ्वी भी कल्पांत में नष्ट हो जाती है। तेजस्वी की उपमा दें तो सूर्य का प्रकाश मर्यादित है, पर सद्‌गुरु का ज्ञानप्रकाश अमर्याद है। जल की उपमा दें तो वह भी कालांतर में सूखकर नष्ट हो जाता है!....अमृत की उपमा भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि अमृत प्राशन करने वाले देवता भी अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।...उन्हें कल्पतरु कहें तो कल्पतरु केवल इच्छानुसार ही फल देता है, जब कि सद्‌गुरु इच्छाओं का अन्त कर निर्विकल्प पद प्रदान करते हैं। सद्‌गुरु को लक्ष्मीवंत कहें तो लक्ष्मी भी नाशवान हैं और सद्‌गुरु के द्वार पर तो मोक्ष लक्ष्मी हाथ जोड़े खड़ी रहती है।...."

और आगे समर्थ रामदास कहते हैं:

"जिस आत्मवस्तु की प्राप्ति के लिये अनुमान अपर्याप्त है, प्रयत्न और तर्क कुण्ठित हैं, विवेक तथा शब्द असमर्थ हैं, जहाँ मन की चपलता काम नहीं देती, सहस्रमुख वाला शेष भी जिसका वर्णन करते करते थक गया, सर्व ज्ञान के भण्डार वेद भी जिसे प्रकट नहीं कर सके-ऐसी आत्मवस्तु ऐसे संत महापुरुषों के सत्संग द्वारा स्वानुभव में आती है। उनकी महिमा शब्दों में कौन वर्णन कर सकता है!"

जो जो अनुभूतिसम्पन्न संत महापुरुष हुए हैं उन सबने

महापुरुषों की अमाप महिमा को एक स्वर से स्वीकार किया है । आश्रम में भी जब कोई साधक यह श्लोक बोलता है:

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुर्साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवै नमः ॥

तब पूज्यश्री कभी कभी उसके श्लोक बोल जाने के बाद कहा करते हैं-

गुरु को ब्रह्मा विष्णु महेश अथवा उनसे भी ऊपर बता दिया गया है इस श्लोक में-यह कोई भावावेश का परिणाम नहीं है अथवा कोई अतिशयोक्तिपूर्ण प्रलाप नहीं है । ये उद्गार साधक की अनुभूति के हैं । अनुभूति का वह आनन्द है ही ऐसा कि जहाँ शब्दों की पहुँच ही नहीं है और उस आनन्द में साधक को स्थिति कराने में माध्यम बनते हैं-'गुरु' । वह अहोभाव होता ही ऐसा है कि जहाँ शब्द छोटे पड़ जाते हैं । वह आत्मनशा है ही ऐसा कि जिसे करके सदियों-सदियों और जन्मजन्मांतरों से आनन्द की खोज में प्यासा यह मानव पथिक असीम-अमाप आत्मतृप्ति अनुभव करता है ।

सच्चा नशा-'आत्मनशा'

उस नशे के आगे संसार के धन-वैभव और पद-यश के नशे चीज ही क्या है ? जिसे उस नशे का स्वाद एक बार आ गया, वह उसे छोड़ना ही नहीं चाहता । वह बार बार उसी में डूब जाना चाहता है । लोग कितना ही उसे

बहिर्मुखी करके संसारी रंग में बहलाने की कोशिश करें मगर वह क्योंकि असली आत्ममस्ती का नशा कर चुका होता है, अतः लोगों के धोखे में आता ही नहीं । हाँ, लोगों के साथ ऊपर से नाटकीय व्यवहार वह अवश्य कर सकता है-मिथ्या जानते हुए भी, मगर भीतर से सचेत और अपनी आत्ममस्ती में रहता है ।

उस महापुरुष के भीतर इतना आनन्द भरा होता है कि उसे आनन्द के लिये संसार की ओर आँख खोलने की भी इच्छा नहीं होती । जिस सुख के लिये संसार के लोग अविरत भाग-दौड़ करते हैं, रात दिन एक कर देते हैं, एड़ी से चोटी तक का पसीना बहाते हैं फिर भी वास्तविक सुख नहीं ले पाते-केवल सुखाभास ही उन्हें मिलता है, वह सच्चा सुख-वह आनन्द उस महापुरुष में अथाह रूप से हिलोरे लेता रहता है । इसीलिये तो गुरुनानकदेव ने कहा है-

'नाम नशे में नानका बूड़ो रहे डिह-रात'

ऐसे महापुरुष की वाणी अमृतमय होती है । ऐसे महापुरुष की दृष्टि अमृतमय होती है । ऐसे महापुरुष के चरण जहाँ पड़ते हैं वह तीर्थ बन जाता है । ऐसे महापुरुष के सम्पर्क में जो भी आता है-निहाल हो जाता है । ऐसे महापुरुष का सांनिध्य पापनाशक होता है । ऐसे महापुरुष अपनी एक निमिष की दृष्टि मात्र से मनुष्य को जो दे सकते हैं, वह संसार की कोई शक्ति नहीं दे सकती । ऐसे महापुरुष से साधक अथवा शिष्य को जो मिलता है,

उसका बदला संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं हैं जिसे देकर चुकाया जा सके ।

वस्तुतः तो सभी लोगों की दौड़ उसी अनन्द के लिये हो रही है, मगर रास्ता हर एक को ठीक नहीं सूझता । जिसे ऐसा महापुरुष मिल जाय उसको तो सच्चा रास्ता मिल ही जाता है । उसका साधना का मार्ग एकदम छोटा हो जाता है-उस महापुरुष की कृपा से । मगर ऐसे महापुरुष मिलते कहाँ हैं ?

पलटू पारस क्या करे

ऐसे महापुरुष जिस आनन्द में मग्न रहते हैं-चकचूर होते हैं वही आनन्द वे अपने आस पास लुटाते भी रहते हैं, मगर जो ठीक ढंग से उन्हें समझ पाते हैं वे लाभ लेकर अपनी साधना में आगे बढ़ते रहते हैं, और जो उनमें श्रद्धा नहीं कर पाते वे उनके चारों ओर लुट रहे आनन्द से भी बिलकुल निकट होते हुए भी वंचित रह जाते हैं ।

लोग यहाँ यह शंका कर सकते हैं कि शायद वे लुटाते ही नहीं होंगे । ऐसे लोगों के लिये पलटू महात्मा ने अच्छा दोहा कहा है । पलटू एक अच्छे आत्म ज्ञानी संत हो चुके हैं । पलटू कहते हैं :

पलटू पारस क्या करे जो लोहा खोटा होय ।
सदगुरु सबको देत हैं लेता नाहीं कोय ।

कईबार पूज्यश्री इस प्रकार उस ज्ञानी महापुरुष की

महिमा का वर्णन करते हैं तो लोगों की बड़ी उत्सुकता जाग उठती है कि ऐसा महापुरुष कहीं मिल जाय तो अवश्य दर्शन करें । उस समय पूज्यश्री स्वयं ही किसी से पूछ लिया करते हैं-

"क्यों भाई, तुमने ऐसा महापुरुष कहीं देखा है ?"

नया-नया कोई व्यक्ति होता है तो वह कई बार पूज्यश्री की इन बातों के गूढार्थ को नहीं समझ पाता और बोल देता है-

"नहीं स्वामीजी ।"

फिर पूज्यश्री कहते हैं-

"तुम्हें यदि ऐसा महापुरुष कहीं मिले तो हमको भी बताना । हम उसका दर्शन करने पैदल चलकर जाएँगे ।"

मगर जो लोग पूज्यश्री को थोड़ा बहुत समझने लगे हैं वे उनकी बातों में नहीं आते और बोल उठते हैं-

"हाँ स्वामीजी किया है ।"

"कहाँ हैं ? हमें भी बताओ, हम भी चलेंगे उनके दर्शन के लिये ।"

"कहीं जाने की जरूरत नहीं है स्वामीजी ! वे हमारे सामने ही विराजमान हैं ।"

यह कहने पर स्वामीजी कहते हैं-

"जाओ...तुम भी कैसी बातें करते हो ? (विनोद में) ब्रह्मज्ञानी में तो कितना सामर्थ्य होता है ! उसकी उपस्थिति

मात्र से कितने ही चमत्कार घटते रहते हैं और....(हंसते हुए)....और हम तो देखो, एक चिड़िया भी मार के जिन्दा नहीं कर सकते ।"

मगर भक्तों का निश्चय जब स्वामीजी नहीं डिगा पाते तो वे एक प्रसंग सुनाते हैं-

मैं ब्रह्म हूँ-एक प्रसंग

अजमेर में एक संस्था के आगेवान कार्यकर्ता को किसी मस्त फकीर की कृपा से स्वरूपानुभूति हुई तो वह अपनी आत्ममस्ती में ही अधिकतर रहने लगा । जब संस्था में उसको सक्रिय नही देखा तो उसके मित्र उसके पास पहुँचने लगे और उसको कहने लगे कि 'भाई, कुछ करो । अब निष्क्रिय-से क्यों हो रहे हो ?'

तो वह बोला-

भाई, क्या करूँ ? अब करने को कुछ बचा नहीं। ओ....म, ओ....म, ओ....म । मैं तो वही हूँ । मुझमें कोई अपूर्णता है ही नहीं । मुझे अब क्या करना शेष रहा है ?

करना था सो तो कर लीना, अब ना करना ना भरना है;
जो पाना था सो पा लीनाः अब ना पाना ना खोना है ।
ना जाना है ना आना है, ना जीना है ना मरना है;
बस आप ही में रम रहना है; जो आन पड़े सो सहना है ।
ना चढ़ना है ना पड़ना है, ना रोना है ना हँसना है;
बस आप ही हास्य बना फिर; क्यों करनी का बोझ उठाना है ?

इस प्रकार की बातें जब वह मित्रों के सम्मुख करता तो मित्र उसको समझ नहीं पाते थे और सोचते थे...इसका दिमाग जरा....। अर्थात् उसकी भीतरी मस्ती का अन्दाज तो मित्र लगा नहीं पाते थे । तो फिर वे इससे पूछते-

"अच्छा तो बताओ, तुम कौन हो ?"

"आनन्द हूँ, परिपूर्ण हूँ, चैतन्य अक्षय बोध हूँ ।
पर से परे अद्वैत हूँ, निर्दोष हूँ बिनु क्रोध हूँ ।
संसार के सुख दुःख मुझ निःसंग को छूते नहीं ।
मैं ब्रह्म हूँ, मैं ब्रह्म हूँ-इसमें जरा संशय नहीं ॥"

"तो तुम ब्रह्म हो ?"

"हाँ ! बेशक ! !"

"मतलब तुम सर्वशक्तिमान् हो ?"

"हाँ !"

"अर्थात् तुम सब कुछ कर सकते हो ?...."

यहाँ तक बात चलने पर मित्र उसकी परीक्षा लेने हेतु कहते-

"जो सर्वशक्तिमान हो तो सब कुछ कर सकने में समर्थ हो । यह हम कैसे विश्वास करें ? तुम जरा एक चिड़िया मार कर जिन्दा करके तो दिखाओ !"

तब वह हंसकर कहता-

"अरे, मैनेजर का काम तुम मालिक से करने को कहते हो !....यह सब पैदा करना, मारना-जिलाना, करना-कराना ईश्वर करता है । ब्रह्म कभी कुछ नहीं करता !"

यह सुनकर पूज्यश्री के सम्मुख बैठे भक्तगण भी हंस पड़ते हैं। इसी प्रकार विनोद-विनोद में सहज भाव से आश्रम में आए हुए लोगों को सत्संग का लाभ मिलता रहता है।

जगह चरणों में नहीं हृदय में

कभी-कभी कोई व्यक्ति पूज्यश्री के सम्मुख प्रणाम करते समय बहुत भाव में आ जाता है और बड़े करूण स्वर में प्रार्थना करता है-

"बापू....! मुझे पार लगा दो...।"

पूज्यश्री उसे अपने चरणों पर से हाथ पकड़ कर ऊपर उठा लेते हैं और कहते हैं-

"अरे ये क्या करते हो....? इधर नहीं, तुम्हारी जगह तो (हृदय की ओर इशारा करते हुए) इधर है।"

"बापू, जिनको आप मुक्ति देने वाले हैं उनमें मेरा नाम भी...।"

"अरे हाँ-हाँ, दिल छोटा क्यों करते हो....? लिख दिया तुम्हारा नाम। बस !...तुम्हारा नाम लिस्ट में न लिखा होता तो तुम यहाँ आ पाते क्या....?"

पूज्यश्री के आत्मिक प्रेम से ओत-प्रोत ये वचन सुनकर भक्त गद्गद् हो उठता है। उसकी सारी थकान उतर जाती है। वह तरोताजा हो उठता है। न जाने भीतर ही भीतर गुरु और शिष्य में क्या वार्तालाप और क्या आदान प्रदान

ऐसे क्षणों में हो जाता है कि वह व्यक्ति आया था व्यक्ति के रूप में और जाता है अपने भीतर शिष्य भाव का अंकुर उगाकर-हंसता खेलता प्रफुल्लित हृदय से।

यही है महापुरुषों की महानता !

उपनिषद् कहते हैं-

यद् यद् स्पृश्यति पाणिभ्यां यद् यद् पश्यति चक्षुषा।
स्थावराणाविमुच्यंते किं पुनः प्राकृता जनाः॥

जिनको ऐसे महापुरुष अपने हाथ से छू देते हैं, जिनको अपनी आँख से देख लेते हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं, फिर दूसरे लोगों की तो बात ही क्या ?....यहाँ तक कि जड वस्तुएं भी मुक्त हो जाती हैं। जड़ में भी जीवत्व तो सुप्त अवस्था में है ही, वह जाग उठता है और आत्मभाव प्रकट हो कर मुक्त हो जाता है। वस्तुतः ब्रह्म के सिवाय तो दूसरी कुछ वस्तु है ही नहीं तो जीव भी ब्रह्मात्मक है और जगत भी ब्रह्मात्मक है।

विनोदी स्वभाव

पूज्यश्री का स्वभाव बड़ा ही विनोदी है। कभी कभी तो उनके इस विनोद का शिकार दर्शनार्थ नये आने वाले भक्त लोग बन जाते हैं।

स्वामीजी उधर हैं

एक बार कोई नया नया व्यक्ति आश्रम में आया। पूज्यश्री उस समय सत्संग भवन के बाहर लॉन (घास) में

टहल रहे थे । आगंतुक को पता तो था नहीं कि ये ही पूज्यश्री हैं जिनका मैं दर्शन करने आया हूँ । पूज्यश्री भी उस समय केवल चड्डी पहने हुए ही थे (कईवार वे इसी वेश में टहला करते हैं आश्रम में) इसलिये न पहचान पाने के कारण उसने उन्हीं से प्रश्न किया–

"पूज्य स्वामीजी कहाँ हैं और कब उनके दर्शन होंगे ?"

पूज्य श्री ने नदी किनारे वाली महंत चन्दीरामजी की कुटिया की ओर इशारा करते हुए उसे उधर भेज दिया। महंतजी की उम्र अधिक है एवं दाढ़ी भी उनकी सफेद है, अतः वे स्वामीजी हैं–ऐसा समझने के धोखे में कोई भी सरलता से आ सकता है । वह व्यक्ति भी महंतजी के पास जाकर प्रणाम आदि करके बैठ गया । महंतजी ने अपने आसन–प्राणायाम आदि पूरे करके जब पूछा, कि कैसे आए तो उसने सारा हाल सुनाते हुए कहा कि ऐसे ऐसे आपके एक शिष्य ने मुझे आपके पास भेजा है । महंतजी समझ गए कि बापू ने विनोद किया है । "अरे, तुम धोखा खा गए ! वापस जाओ, वे ही स्वामीजी हैं"– कहकर उन्होंने उसको वापस भेजा । फिर उसके वापस आने पर पूज्यश्री के सम्मुख खड़े सारे अन्य भक्त भी पूज्य श्री सहित ठहाका मारकर हंस पड़े ।

भोली महिला का आशीर्वाद

एक बार एक महिला आकर पूज्य श्री के सम्मुख अपने कई दुःखडे रोने लगी । पूज्य श्री ने उसे बातों में

लगा दिया । वह अपने दुःख तो भूल गई और पूज्य श्री की बातों में रस लेने लग गई । पूज्यश्रीने देखा कि अब यह प्रसन्न है तो उससे कहा–

"अब तुम मेरे सिर पर हाथ रखो और आशीर्वाद दो कि मेरी साधना ठीक चलें और भगवान प्रसन्न रहें मुझसे ।"

उस भोली महिला ने पूज्य श्री की इन बातों को सच्ची समझकर उनके सिर पर हाथ रखा और आशीर्वाद देने लगी । साधक लोगोंने पूज्यश्री के संकेत के कारण काफी देर तक अपनी हंसी दबाए रखी और जब वह चली गई तो खुलकर हंस पड़े ।

मैं तो कुछ जानता नहीं

एक बार कुछ आसन–प्राणायाम जानने वाले एक सज्जन पूज्यश्री का नाम सुनकर आश्रम आए। पूज्यश्री उस समय लॉन में एक सिमेंट के बांकड़े के पास बैठे हुए थे। उन सज्जन ने सीधे आकर पूज्यश्री से ही कहा कि मैं आसन–प्राणायाम आदि कुछ जानने और उनके बारे आप से चर्चा करने के लिये आया हूँ ।

फिर खड़े खड़े ही उसने पूछा–

"क्या मैं यहां बैठ सकता हूँ ?"

तो पूज्य श्री ने बांकड़े की ओर इशारा कर दिया । वह जाकर बांकड़े पर बैठ गया । पूज्य श्री नीचे ही बैठे रहे । फिर उसको कहा–

"भाई, मैं तो कोई योग-वोग जानता नहीं हूँ। यहाँ जंगल में पड़ा हूँ। मेरे पास तो पहनने को पूरे कपड़े भी नहीं हैं। जैसे-तैसे गुजारा चलता है।"

आगंतुक बोला-

"तो यह अखबारों में आपके बारे में जो योग-शिविर और सत्संग आदि के बारे में छपता है वह सब...?"

पूज्य श्री-

'वह तो ये समिति वाले ऐसे ही छपा देते हैं। मैं तो कुछ जानता नहीं। आपको कुछ पता हो तो बताओ।"

बस, आगंतुक थोड़ी देर और बैठा, फिर वहाँ से हटने के बाद आश्रम के एक दो अन्य साधकों से बात की तब पता चला कि विनोद-विनोद में पूज्य श्री ने उसमें सरलता न देखकर उसे टरका दिया है। अब वह फिर से पूज्य श्री से मिलने का उत्सुक हुआ, मगर तब तक पूज्यश्री कुटिया में जा चुके थे।

संतों के द्वार पर जो खाली होकर जाते हैं वे ही कुछ पा सकते हैं। जो भरे हुए जाते हैं कि हम तो पहले से ही बहुत कुछ जानते हैं-वे कोरे ही रह जाते हैं।

अभी नहीं, जब बड़ा हो जाय तब

एक बार मेहसाना जिले के एक भक्त जीताभाई अपने ८-९ वर्ष के लड़के को लेकर आश्रम में आए। पूज्यश्रीने उनसे पूछा-

"हाँ बोलो! क्या कहते हो?"

जीताभाई-"बापू, यह मेरा बच्चा है। कई महीनों से इसका दिमाग ठीक नहीं था। पागल हो गया था। अपने ही कपड़े फाड़ देता था। कई इलाज कराए, मगर सफलता नहीं मिली। एक दिन बापू, मैंने आपमें श्रद्धा करके मन ही मन मानता मानी थी कि यदि यह ठीक हो गया तो इसको आश्रम में कांटे (तराजू) पर तोल कर इसके वजन के बराबर गुड़ आश्रम में बाटूंगा...।

बापू! अब यह बिल्कुल ठीक है। इसको तोलने की आज्ञा दिलवाने की कृपा करें।"

पूज्य श्री जरा गंभीरतापूर्वक बोले-"नहीं।"

जीताभाई बेचारे निराश हो गए। दूसरे श्रोता भी चकित दृष्टि से देखते रहे। उनकी सहानुभूति जीताभाई के प्रति हो गई थी। तभी अचानक स्वामीजी मुस्करा कर विनोदपूर्वक बोले-

"अच्छा भाई, इसको तोलना-मगर अभी नहीं। अभी यह जरा छोटा है न! तो गुड़ कम तुलेगा। जब बड़ा हो जाय तब तोलना ताकि आश्रम को अधिक लाभ हो।...."

और स्वामीजी के साथ ही सभी खिलखिलाकर हंस पड़े। स्वामीजी की ऐसी सरल विनोदप्रियता के कारण गंभीर वातावरण में मुरझाए हुए दिल भी खिल उठते हैं।

आश्रम में ही नहीं ऐसे विनोदी प्रसंग जहाँ जहाँ

पूज्य श्री पधारते हैं वहाँ सब जगह बनते रहते हैं।

ये ऐसे-वैसे बाबा नहीं हैं

एक बार गोधरा (गुजरात) में आश्रम के बाहर सड़क पर पूज्य श्री टहलने निकले थे । उन्होंने थोड़ी ही दूरी पर देखा कि एक भिखारी लड़का अपने पात्र में भीख में मिली हुई कुछ सूखी रोटियां और कढ़ी आदि लेकर जा रहा है। जब उस लड़के की पूज्य श्री पर नजर पड़ी तो वह थोड़ा चिंतित हुआ और जल्दी जल्दी कदम बढ़ाने लगा । उसे यह भय था कि पीछे से आने वाला यह साधु कहीं आकर मेरी रोटियाँ छीन न ले । पूज्य श्री उसके भय के कारण को भांप गये और अपने विनोदी स्वभाव के कारण उसके पीछे चल पड़े !

पूज्य श्री को अपने ही पीछे आते देखकर तो उसका संशय और पक्का हो गया और वह तेजी से कदम बढ़ाने लगा । पूज्य श्री ने भी अपनी गति तेज कर दी । अब तो वह घबरा कर दौड़ने लगा और गाँव के अन्दर जा पहुँचा। पूज्य श्री भी पीछे पीछे उसके नजदीक पहुंच ही गए। अब वह कुछ दुकानों के सामने जाकर रुक गया और रोते हुए उन दुकानदारों से पूज्य श्री की ओर इशारा करते हुए कहने लगा-

"वो बाबा मेरी रोटियाँ छीन लेंगे....!"

दुकानदार पूज्यश्री को देखते ही जान गए, अतः उन्होंने प्रणाम आदि किया और उस लड़के को समझाते हुए कहने लगेः

"अरे पागल! ये रोटियाँ छीनते नहीं हैं। इनकी कृपा से तो कईयों को रोटियाँ मिलती हैं। ये अन्नचोर नहीं अन्नदाता हैं।....ये ऐसे-वैसे बाबा नहीं हैं। ऐसे महात्माओं के तो दर्शन भी लोगोंको दुर्लभ होते हैं और तू उनसे डर कर भाग रहा है....?"

जब सारी बात लड़के की समझ में आ गई तो उसके चेहरे पर मुस्कुराहट खिल उठी। पूज्य श्री अपने ही इस कंगाल स्वरूप को इस रूपमें आनन्द लेते हुए देखकर हँस पड़े और मनही मन बोल उठेः

"वाह रे मेरे प्रभु! तूने कैसे-कैसे स्वाँग बनाए हैं आनन्द के लिये। क्या तू चुप नहीं बैठा रह सकता था?"

यह जीव का दुर्भाग्य है कि उसे शाश्वत् का आनन्द देने के लिये प्रभु हर प्रकार की परिस्थितियाँ पैदा करके उसके पीछे दौड़ते हैं, मगर वह यह समझ कर डरता है कि कहीं प्रभु अथवा ये दुःखप्रद परिस्थितियाँ मेरे को जो मिला हुआ है उस सबको छीन न लें। हमारा धन, हमारा ऐश्वर्य, हमारा कुटुम्ब, हमारी पद-प्रतिष्ठा कहीं हमारे से छिन न जाएँ। हालत तो मनुष्य की उस कंगाल लड़के की सी है कि जिसके पास था ही क्या? सूखी रोटी के कुछ टुकड़े ही न? कुछ मेवा-मिष्ठान्न तो था नहीं और वे भी मिले तो भीख में ही थे न जिस पर उसने अपनी मुहर लगा दी थी कि ये मेरे ही हैं और इन्हें हर प्रकार से बचाऊँगा ही। इस बचाने के लिये उसे कितना

भयभीत होकर दौड़ना पड़ा और आखिर थक कर रुक ही जाना पड़ा यह सोचकर कि चलो, अब जो भी होगा....देखा जाएगा। रहेगा तो ठीक, नही रहेगा तो नहीं सही। मगर कहाँ तक भागूँ....?

यही मनुष्य का हाल है। लाए कुछ थे नहीं साथ में। जो मिला उस पर अपने पन की मुहर लगा दी और मालिक बन बैठे। अब वह कही छिन न जाय इस चिंता-चिंता में जीवन व्यतीत होता जाता है। और जब भी वह छीना जायगा तब मनुष्य से पूछकर नहीं छीना जायगा और कोई लाख कोशिश करें तो भी उसे एक दिन छीन लिये जाने से रोक नहीं सकता। जब जब भी कोई ऐसी परिस्थिति खड़ी होती है जिसमें धन-पतिष्ठा आदि की हानि होने की संभावना खड़ी होती है तो मनुष्य घबरा जाता है। उसे ईश्वर पर गुस्सा आता है यह देखकर कि सारे संसार के लोग सुख भोग रहे हैं; उनको तो कुछ किया नहीं और मुझे ऐसी भयंकर परिस्थिति में डालकर सता रहा है! यह उसकी कैसी दयालुता है?

प्रभु की परम दयालुता

मगर होती वह दयालुता ही है। उस समय वह इस बात को भूल जाता है कि इस नश्वर में जब वह भूला हुआ अपनी उम्र गंवारहा है तब प्रभुने कृपा करके उसे चेताने के लिये यह एक अवसर उपस्थित किया है कि जो तेरा नहीं है, जो न था तेरा और न रहेगा, यह केवल

भ्रम है, मोह है, इस मोह से जाग। यह नश्वर है। नश्वर से नेह लगाकर तू दुखी होगा। क्योंकि नश्वर कभी स्थायी नहीं रहता। तू उसे कितना ही पकड़, एक दिन वह तुझे छोड़ जायगा। इसलिये उसे पहले से ही छोड़ दिये जाने की पूरी तैयारी कर ले-जब तक उम्र बाकी है और शरीर में शक्ति है। अन्यथा जब प्रकृति के हाथों जबरन छुड़ाया जायगा तब बहुत दुखी होगा। उस समय कोई तुम्हारे दुःख में साथ नहीं देगा। तो यह तो उसकी परम दयालुता है कि मोह निद्रा से जगाकर वह मनुष्य को उसकी नश्वर पदार्थों से वृत्ति हटाकर उस शाश्वत् का जो कभी छीना नहीं जा सकता, स्वाद दिलाने के लिये बिना आमंत्रण के पीछे पीछे दौड़ा आ रहा है।

कहते हैं कि भक्त यदि एक कदम चलता है प्रभु की ओर तो प्रभु उसके लिये दस कदम दौड़कर आगे आते हैं। मगर यहाँ तो हाल यह है कि प्रभु हमारे लिये, हमसे मिलने के लिये बिना मांगे शाश्वत् स्वाद 'ईश्वरी-आनन्द' देने के लिये पीछे पीछे दौड़े आ रहे हैं और मनुष्य उस कंगाल लड़के की भांति कहीं कुछ छिन न जाय इस डर से आगे आगे भागा जा रहा है।

वाह री मनुष्य की नियति!

उस कंगाल लड़के की शंका उसके मन की उपज थी, भागने का निर्णय उसके भयभीत मन ने लिया। भयभीत होने के लिये उसे किसी ने नहीं कहा और आखिर विवश

हो उसे रुकना ही पड़ा और जबरन पूज्यश्री का आंतरिक प्रेम एवं आशीर्वाद उसे मिला । इस संसार में इसी प्रकार जो कुछ हो रहा है वह स्वतः ही हो रहा है हम उसमें अहंबुद्धि करके अपने ही मन से कल्पनाएं करके-यह मैंने किया-समझकर कभी भयभीत होकर भागते हैं, कभी लोभ में आकर दौड़ते हैं तो कभी मोहवश होकर रोते हैं । सब कुछ अपने ही मन से उपजाकर उसमें सुख या दुःख का अनुभव करते रहते हैं । मगर परम सुख की ओर हमारी कभी दृष्टि ही नहीं जाती, क्योंकि हम भागते ही रहते हैं।

वस्तुत दुःख मात्र मनुष्य की अपनी सृष्टि है, अन्यथा अपने ही अन्दर सदैव से बैठे आनन्द स्वरूप परमात्मा के होते दुःख छू ही कैसे सकता है ? मगर कई प्रकार के भय मन में अपने आप ही पैदाकर के हम भागते रहते हैं-जिन्दगी भर ।

अगर एक बार भी किसी फकीर या संत के उपदेश को मानकर उस भिखारी लड़के की तरह अंत में थककर विवश होकर खड़े रह जाने की स्थिति आ जाने से पूर्व ही यदि रुक जाय तो भी आनन्द की झलक प्राप्त हो सकती है । संत या फकीरों का यह अनुभव है और उनकी कृपा से मनुष्य लाभान्वित हो सकता है-अगर कोई होना चाहें । अन्यथा ईश्वर या संत पीछे पीछे भी आनन्द का सागर लेकर हमारे लिये दौड़ते जाएँ और हम भयभीत होकर आगे भागें, पीछे मुड़कर भी नहीं देखें तो कैसे मुलाकात होगी !

और फिर भी हम ईश्वर या परिस्थितियों को ही दोष दें तो यह हमारी नादानी नहीं तो और क्या है ?

विनोद-विनोद में ऐसे महापुरुष मनुष्य को आत्मज्ञान का जो भोजन परोसते जाते हैं, उसका संसार में कोई मुकाबला नहीं है । पूज्य श्री कहा करते हैं:-

"मनुष्य को यदि विनोद न मिलें तो मनुष्य पागल हो जाय । मनुष्य ही क्या सभी प्राणी विनोद चाहते ही हैं । बिना विनोद के तो जीवन जीना ही दूभर हो जाय । छोटी-मोटी परिस्थितियों से जो व्यक्ति घबरा जाय, चिंतित हो जाय वह जीवन ठीक प्रकार से जी नहीं सकता । जीवन तो एक नाटक है-खेल मात्र है । उसको खेल समझ कर उसमें खेलो । उसकी किसी भी भयंकर परिस्थिति अथवा दुःख को इतना वास्तविक क्यों समझते हो ? धैर्य रखकर देखते जाओ, वह भी गुजर जाएगी । अपने जीवन को आनन्दमय बनाओ । सदैव प्रसन्न रहना ईश्वर की सबसे बड़ी भक्ति है ।"

वाडा और पंथों से दूर-

पूज्य श्री साधना काल में भी पंथों और वाडों से बडे सचेत रहे हैं । एक बार उनकी युवा वय और तीव्र वैराग्य को देखकर एक पंथ वालों ने उन्हें अपने पंथ में जुड़ जाने के लिये बहुत आकर्षित किया । उन्होंने बताया कि हमारे पंथ को स्वीकारोगे तो ही भगवान प्राप्त कर सकोगे । अर्थात् हमारे पंथ में जुड़ जाओ, मगर पूज्यश्री की तीव्र बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं कर सकी । उन्होंने तुरंत

पूछा कि आपके पंथ को किसने प्रारंभ किया और उसे प्रारंभ हुए कितना समय हुआ है ?

इसके उत्तर में जब उन्होंने कहा कि इतना इतना समय पंथ प्रारंभ हुए हुआ है, तो पूज्य श्री ने तुरंत आगे दूसरा प्रश्न पूछा कि क्या इस पंथ के प्रारंभ होने से पूर्व भगवान किसी को नहीं मिले थे ?...फिर आप कैसे कहते हैं कि हमारे पंथ के अनुसार चलोगे तभी भगवान मिलेंगे ? पंथवाले उनके इस प्रश्न से निरुत्तर हो गए ।

इस प्रकार पूज्यश्री पंथ और वाड़ों से सदैव दूर ही रहे हैं । वे कहा करते हैः

"किसी भी पंथ के साथ जुड़ने से साधक का हृदय संकुचित हो जाता है । उसकी उदारता खिल नहीं पाती । जब तक तत्त्वनिष्ठ महापुरुष का संग नहीं मिलता तब तक साधक के लिये अपना रास्ता काटना बहुत ही कठिन होता है । पग–पग पर माया उसे भटकाती रहती है । कबीर, नानक, रामतीर्थ जैसे सद्गुरु मिल जाने के पश्चात् उसका भय कम हो जाता है । सद्गुरु उसे अपनी कुशलता द्वारा आगे बढ़ाकर उस परम स्थिति तक पहुँचा देते हैं जहाँ से फिर संसार का कोई आकर्षण–विकर्षण, सुख–दुःख, हानि–लाभ प्रभावित नहीं कर सकता ।

पूज्यश्री के सद्गुरू स्वामी लीलाशाहजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके भक्तों एवं ट्रस्टों के अधीन देश भर में कई आश्रम चल रहे हैं । उन्होंने पूज्यश्री को कई बार आमंत्रित किया आश्रम चलाने के लिये, परन्तु जो



नाम नशे में नानका डूबे रहे दिन (दिन)-रात... पूज्यश्री





राह फकीरी कौन अमीरी दासी तेरे चरणों में । राजा रंक जमींदार सब चाकर तेरी नजरों में ॥

एक बार समस्त ब्रह्माण्ड से तादात्मय कर चुका और सर्वत्र फैले एकत्व की अनुभूति कर चुका, वह कैसे बन्धन में रह सकता है ? पूज्य श्री ने किसी भी आश्रम के संचालन का भार अपने ऊपर नहीं लिया।

'हुआ जो फकीर तो रहा नाता किसी से क्या ?'

उन्हें बन्धन स्वीकार नहीं है। पूज्य श्री प्रायः साधकों को कहा करते हैं:

"यह मत समझना कि यह स्वामीजी का आश्रम है। यह आप ही लोगों का है और आप ही को चलाना है। हम तो केवल इसमें रहते भर हैं। संत और पक्षियों का क्या भरोसा कि कब उड़ान भर जाय और अगले क्षण किस पेड़ की शाखा पर जा बैठें !

और हम तो यह भी कहते हैं कि आपको यहाँ हमारे साथ रहने से साधना में लाभ होता हो तो रहना। यदि लाभ नही होता है तो हम किसी को नहीं रोकते। यदि कल जाने की मन में तमन्ना उठती हो तो आज ही चले जाओ। यह मत सोचना कि हम चले जाएँगे तो बापू का और आश्रम का क्या होगा ? इसका जो होना है होता रहेगा–आपको नश्वर संसार ही अच्छा लगता है तो आप इसी क्षण जाने को स्वतंत्र हैं। और हमारा आत्मज्ञान कोई आलू–मूली–गोभी–पालक की सब्जी नहीं है कि आपने उसकी कद्रों नह की तो वह सड़ जाएगी। नहीं...वह कभी बासा नहीं होता। वह तो सदैव ताजा ही रहता है।

और याद रखो कि आत्मज्ञान रूपी अमृत शुद्ध अंतःकरण रूपी बर्तन में ही डाला जाता है, अशुद्ध में नहीं । इसलिये संसार के विषयों से मन को हटाकर निष्काम सेवा और साधना करके अपने अंतःकरण को शुद्ध और योग्य बनाओ ताकि आत्म-ज्ञान रूपी अमृत उसमें डाला जा सकें । यही आप सब का कर्त्तव्य है ।

आप के अपने परमार्थ की दृष्टि से हमारी ये बातें आपको रुचती हो, तो यहाँ रहो और अपना जीवन सफल कर लो, अन्यथा हमारी तरफ से आप को कोई बन्धन नहीं है ।

हम स्वयं किसी बन्धन में रहना पसन्द नहीं करते तो आपको हम क्यों रखेंगे बन्धन में ? लेकिन हाँ, जब तक माया के सभी बन्धनों से मुक्त न हो जाय तब तक गुरु के बन्धन में रहना श्रेष्ठ है । ऐसा हम तो कर चुके हैं और उस परम निर्बन्ध की अवस्था का आनन्द ले चुके हैं–ले रहे हैं । आप भी उसके इच्छुक हो तो आपको आमंत्रण है । हम उस आनन्द के प्रमाण बनते हैं कि हाँ आप चलोगे तो आप भी पहुँचोगे ही ।"

आसक्ति रहित जीवन

इस प्रकार पूज्यश्री मस्त जीवनमुक्त फकीर हैं । एक बार रात्रि को ११ बजे सत्संग करते हुए पूज्यश्रीने कहा कि आसक्ति मत रखो । जिसका जीवन आसक्ति रहित है वही सुखी है । फिर ऐसे ही बात-बात में एक दो सत्संगी भाईयों को कहां कि चलो, अभी कौन तैयार है बाहर चलना हो तो ?

इस बात पर सभी विचार में पड़ गए । पूज्य श्री उस समय केवल चड्डी पहने हुए थे और ऊपर एक सफेद चादर ओड़े हुए थे । पूज्यश्री ने फिर से कहा कि आपको जो भी सामान साथ लेना हो वह ले सकते हो और मैं यहाँ से इसी अवस्था में चलता हूँ । यहाँ से अपनी कुटिया में भी नहीं जाऊँगा । उस दिन रात्रि को सचमुच ही पूज्य श्री आश्रम से रवाना हो गए । जो कमण्डलु सदैव साथ रखते थे, वह भी उस रात उन्होंने साथ नहीं लिया । फिर एक साधक आश्रम से पूज्य श्री के कुछ कपड़े और कमण्डलु साथ लेकर उन्हें पहुँचाने गया । ४–५ रोज बाद पूज्य श्री आश्रम में लौटे थे ।

अजातशत्रु 'पूज्य श्री'

संतों के हृदय की विशालता अथाह होती है । उनके मन में किसी के भी प्रति रागद्वेष नहीं होता । यही कारण है कि मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र भी अपना शत्रुभाव उनके सम्मुख भूल जाता है । ऐसे महापुरूषों के पावन चरणों से पवित्र हुई भूमि पर शेर और बकरी भी एक ही घाट पानी पीते हैं । आश्रम में जंगली क्षेत्र होने से कभी कभी सांप भी आया करते हैं । मगर आज तक किसी सांप ने किसी भी साधक को नुकसान नहीं पहुँचाया है । और पूज्य श्री तो प्रायः सांप के साथ खेलने लग जाते हैं ।

आत्मभाव का चमत्कार

एक बार करीब डेढ मीटर लम्बा काला सर्प सत्संग

भवन के सामने वाले छोटे बड़ के पेड़ पर आकर लिपट के बैठ गया। मालूम होते ही पूज्य श्री उसके समीप पहुँच गए और उसे बड़े प्रेम भाव से निहारने लगे। ८-१० अन्य साधक भी बड़ को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गए। पूज्य श्री ने सबके देखते-देखते उसकी पीठ पर प्रेमपूर्वक हाथ फिराया। वह विषधर था बड़ा भयंकर। मगर पूज्य श्री के हाथ फिराने से उसे न मालूम कौनसा आनन्द आ रहा था कि उसने कोई विरोध ही नहीं किया और फन उठाकर उनकी ओर देखते हुए डोलने लगा। पूज्यश्री ने एक बर्तन में दूध मंगवाकर उसे पिलाया।

इतने में एक व्यक्ति किसी कैमरामेन को बुला लाया। वह भी यह दृश्य देखकर बड़ा आनंदित हुआ, उसने कुछ चित्र भी लिये। फिर स्वामीजी उसे एक गमले में बिठा कर दूसरे बड़ के पेड़ (वटवृक्ष-कल्पतरु) पर ले गए। उस पर उसे चढ़ाकर पूज्यश्रीने कहा-

"अरे, तू यहाँ आया किसलिये है, तुझे जाना है कि नहीं?"

जैसे सांप मनुष्य की भाषा समझ जाता हो वैसा ही उसने आचरण किया। वह बड़ से सर्र-सर्र नीचे उतरा और एक ओर को चल दिया। सब लोग यह दृश्य बड़े आश्चर्य एवं उत्सुकता से देख रहे थे। इतने में पूज्यश्री फिर उसके पीछे दौड़े और उसकी पूंछ पकड़ कर बैठ गये। फिर भी उस भयावह भारी भुजंग ने कोई विशेष प्रतिरोध

नहीं किया। थोड़ी देर उसने छूटकर जाने को जोर लगाया। पूज्यश्री ने अब उसे छोड़ दिया और जाने दिया।

काले नाग से अन्तर्संवाद

इसी प्रकार एक दिन एक कुटिया में लकड़ी के पाट पर जहाँ साधक बैठकर ध्यान करता था न मालूम कब इतना ही बड़ा काला नाग आकर बैठ गया। जब शाम को अन्धेरे में वह साधक अन्दर घुसा तो उसे जोर से फूंSSS की फुत्कार सुनाई दी। कुटिया में प्रकाश करके उस ने देखा तो पाया कि नागदेवता बड़े शान से अपना ही घर समझ कर पाट पर विराजमान हैं। पता लगते ही २०-२५ लोग कुटिया के बाहर दर्शनार्थ एकत्रित हो गए।

इतने लोगों को देखकर लगा कि नाग कुछ घबरा सा गया है। इतने में पूज्यश्री पधार गए उन्होंने मन ही मन जैसे उससे कुछ बातें की। नाग उनकी ओर देखकर डोलने लगा। पूज्य श्री ने कहा-

"क्यों रे, तू यहां हैरान करने के लिये आया है और शान से बैठ गया है? चल, भाग जा अब! यहाँ तेरा कोई काम नहीं है।"

मगर उसने सुना अनसुना कर दिया और फन उठा कर डोलता रहा। पूज्य श्री ने एक थाली मंगाई और उसे उल्टी पकड़कर बैठे रहे। अब नागदेवता अपने स्थान से हिले और चुपचाप चलकर उस थाली के नीचे आकर कुण्डली

मारकर बैठ गये । पूज्य श्रीने थाली से उसको ढंक दिया और ऊपर वजन रख दिया ।

उसके बाद १०–१५ मिनिट तक सत्संग चलता रहा। फिर थाली को पूज्य श्रीने उठाया और एक लकड़ी पटक कर अवाज की तथा उस नाग को धमका कर बोलेः

"जाता है कि नहीं ? या और कुछ करें...?"

बस, इतना कहना था कि नागदेवता दरवाजे से बाहर की ओर चल पड़े । लोगों ने उसे रस्ता दे दिया । दरवाजे से बाहर आकर तो नाग देवता ऐसे दौड़ पड़े कि फिर खोजे भी नहीं मिले ।

ऐसे ही पूज्यश्री की कुटिया में एक पीला सा सर्प फूलों की बेल के अन्दर घूमता रहता था । एक दिन पूज्य श्रीने उसे एक लोहे के तगारे (बर्तन) में डाल दिया और अपने एक हाथ में उसे उठाकर नदी के किनारे छोड़ आए।

इस प्रकार के कई प्रसंग आश्रम में बनते रहते हैं । पूज्य श्री कहा करते हैं:

"मैं किसी बाजीगर की तरह सांप को वश में करने का कोई मंत्र–तंत्र नहीं जानता हूँ । हां, मैं सबसे प्रेम करता हूँ । सबको आत्म-भाव से देखता हूँ। सबमें अपने परम प्यारे का ही दर्शन करता हूँ । बस, यह सब आत्मभाव का ही चमत्कार है । यह शक्ति आप सब में छिपी हुई है, मगर आप लोग जगाते नहीं हैं । संतों में जागी हुई होती है । फर्क इतना ही है । आप भी उस अपनी आत्मिक शक्ति को जगाओ । अपने आप नहीं जगा सकते तो किसी तत्त्वनिष्ठ महा-

पुरुष का सांनिध्य लाभ लेकर जगाओ, पर जगाओ अवश्य...नहीं तो यह मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जायगा ।"

परम उत्साह के प्रदाता–पूज्यश्री

पूज्यश्री के उपदेशों में यह बात बार बार आती है:

अपने जीवन में निर्भयता लाओ । वेदान्त कायरता नहीं बल्कि अनंत बल, साहस, धैर्य एवं स्फूर्ति देता है । जदैव हानि-लाल, मान–अपमान से प्रभावित दुर्बल एवं कायरतापूर्ण जीवन जीना भी कोई जीवन है ? छोटी-छोटी वासनाओं के गुलाम होकर दीन मत बनो । उन वासनाओं और तुच्छ इच्छाओं को परे फेंक दो जो तुम्हें दीन बनाती हैं ।

अपने जीवन में ध्यान–साधना आदि द्वारा ऐसी दिव्यता और ऐसी निर्भयता लाओ कि यदि मौत सामने आए तो वह भी कांप उठे । अपने भीतर इस भाव को पूर्णतया दृढ़ कर लो कि मुझे इस जगत में कोई भयभीत नहीं कर सकता । मैं देवों का देव, शाहों का शाह हूँ । जगत मेरी सत्ता से प्रकाशित है, मैं जगत की सत्ता से नहीं ।

भय को दूर भगा दो, क्योंकि भय मात्र मृत्यु है । निर्भयता ही जीवन है । बाह्य परिस्थितियों अथवा लोगों से क्या डरना ? वो हमें भयभीत या दुःखी ही कैसे कर सकती हैं जब तक कि मैं स्वयं अन्दर से अपने को भयभीत अथवा दुःखी होने की स्वीकृति न दूँ ? 'ॐ आनन्द आनन्द आनन्द ! ! !'

सदैव प्रसन्न और निर्भय रहो । जगत सारा सपना है । सपने के दृश्य मुझे प्रभावित नहीं कर सकते–यह सदैव याद रखो और निर्भयता पूर्वक कहो:

"हम से जमाना है, जमाने से हम नहीं ।"

इस प्रकार पूज्य श्री के नजदीक आनेवाला हर व्यक्ति अपने में एक नई चेतना और ताजगी अनुभव करता है। पूज्य श्री कहा करते हैं:

"कीड़े-मकोड़े की तरह इस जगत में आकर चले जाना-यह कोई मनुष्य जीवन की सार्थकता नहीं है।

जब तुम आए जगत में, जग हँसे तू रोय।
ऐसी करनी कर चलो, तू हँसे जग रोय॥

तुम भले ही जगत में आए थे रोते-रोते और जगत खुशियाँ मना रहा था तुम्हें देखकर। परन्तु अब अपने जीवन को चमका कर जगत में कुछ ऐसा करके जाओ कि जगत को तुम्हारा अभाव खटके। तुम जाओ जगत से तो हंसते-हंसते जाओ और जगत तुम्हारी याद करता रहे। तुम यदि जगत में रहे हो तो तुम्हारी सुगंध गुलाब की सुगंध की तरह फैलती रहे:

गुलाब बन के महक तुझे जमाना जाने।"

इस प्रकार पूज्य श्री का जीवन इस धरती पर मनुष्य जाति के लिये दिव्य प्रेरणा स्रोत है। आनन्द का एक जीता-जागता झरना है। उनकी वाणी अमृत वाणी है। उनका सांनिध्य संसार के उत्तम हृदयों में शांति की वर्षा करता है। उनका दृष्टिपात मात्र लोगों के हृदय में स्फूर्ति एवं नवजीवन का संचार करता है। उनकी हर अंगड़ाई एवं क्रिया में मानव का हित छिपा रहता है। उनके दर्शन मात्र से जीवन में निराश और मुर्झाए हुए हृदय नवीन चेतना लेकर खिल उठते हैं।

बाल्यकाल में उनके लिये की गई भविष्य वाणी कि 'यह बालक भविष्य में महान् संत बन कर कई लोगों को जन्मजन्मांतर के कष्टों से छुड़ाएगा' आज सत्य सिद्ध हुई है। जैसे अथाह विशाल समुद्र में कोई जहाज भटक जाय और प्रकाश स्तंभ के निर्देश से उसे सही रास्ता मिल जाय-उसी प्रकार पूज्य श्री का जीवन संसार की भूल-भुलैया में भटके-अटके लोगों के लिये एक दिव्य प्रकाश स्तंभ है।

भारतीय समाज की समाज रचना में सारे अन्य पद माननीय, आदरणीय पद माने गए हैं जब कि संत पद पूजनीय पद माना गया है। राग-द्वेष रहित होकर समाज को सही रास्ता दिखलाने वाले इस संत पद की परम्परा में आज पूज्य श्री पूर्ण रूप से विकसित सुरभित प्रफुल्लित पुष्प हैं। उनके सांनिध्य में आनेवाला हर व्यक्ति उनकी महक से महक उठता है।

विदेशी तत्त्वज्ञान कहता है कि पहले तुम योग्य बनो, फिर इच्छा करो। परन्तु भारत का तत्त्वज्ञान इस से भी एक कदम आगे बढ़कर कहता है कि 'तुम सिर्फ योग्य बनो' फिर इच्छा करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी। योग्य बन गए -तुम में पात्रता आ गई, तो तुम्हारे लिये पद और पदार्थ तो अपने आप खिंचकर आ जाएंगे। उस समय उपदेश करने के लिये तुम होठ भी नहीं खोलोगे तो भी तुम्हारा हर व्यवहार और रहन-सहन लोगों के लिये

जीता जागता उपदेश बन जायगा । उसी के प्रकाश में से लोग अपना रास्ता ढूंढ निकालेंगे ।

संत की महिमा वेद न जाने

पूज्य श्री का जीवन आज ऐसा ही प्रेरणा स्रोत बना हुआ है । वे एक ऐसे विशाल वट वृक्ष की भांति इस धरती पर फैले हुए खड़े हैं जिस के नीचे हजारों-हजारों यात्रा एवं दुखों के ताप से थके लोग विश्राम ले-लेकर अपने वास्तविक गंतव्य स्थान की ओर गति कर रहे हैं। रंक से लेकर राजा तक और बाल से लेकर वृद्ध तक सभी पूज्य श्री की कृपा के पात्र बनकर अपना जीवन धन्य कर रहे हैं।

संतों के लिये कुछ भी कहना शब्दों की शक्ति से बाहर है, गुरु नानक साहब ने कहा भी है:

संत की महिमा वेद न जाने, जेता जाने तेता बखाने ।

पूज्य श्री के निरंतर प्रवाही और विकासमान अलौकिक व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बांधना संभव नहीं है । उनके बारे में कुछ भी कहना यह एक दुस्साहस है। क्योंकि असीम के बारे में ससीम शब्द अभिव्यक्ति करते समय सदैव छोटे ही पड़ेंगे । बस, उन्हें थाड़ा बहुत भी समझने का एक ही रास्ता है-उनका प्रत्यक्ष दर्शन और भरपूर दर्शन । सागर के किनारे बैठकर सागर की गहराई

का अन्दाज नहीं लगाया जा सकता । गहराई नापने के लिये तो सागर में उतरना ही पड़ता है ।

जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ ।
मैं बोरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ ॥

डूबने का यदि डर है, तो सागर का रहस्य नहीं नापा जा सकता ।

खुद देख जरा पीकर

पूज्य श्री का सांनिध्य एक ऐसे लोक में हमें ले जाता है जहाँ सारे रहस्य खुलते हैं। वे हमारी बाहरी स्थूल आंखों को बन्द कर भीतर की दिव्य दृष्टि को जगा देते हैं और तब भीतर जो राज खुलता है उसका बखान करना असंभव जान पड़ता है। वह राज ऐसा है कि उसके बारे में कहा गया है-

इस राज को हम जाने या अहले नजर जाने ।
जब होती हैं बंद आँखें क्या क्या नजर आता है !
क्या क्या नजर आता है क्योंकर कहूँ वाइज ।
खुद देख जरा पीकर क्या क्या नजर आता है !

खुद उन में डूबें-उतरें और अनुभव करें । यही उनको और स्वयं अपने को भी जानने का एक रास्ता है। और उनकी यदि कृपा के हम पात्र बन गए, उनकी यदि दृष्टि हमें मिल गई तो हजार-हजार दुःख पूर्ण परिस्थितियाँ

हमारे सामने से तिरोहित हो जाएगी और हम भी इस भांति कह उठेंगे:

कभी कतरे को भी दरिया समझ कर डूब जाते थे।
मगर 'प्यारे' अब हम दरिया को भी कतरा समझते हैं॥

धन्य धन्य!!

धन्य हैं ऐसे संत महापुरुष!

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मी कुर्वन्ति कर्माणि,
सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।

(नारदभक्तिसूत्र–६९)

वह देश धन्य है जहाँ वे रहते हैं। वे जिस देश में रहते हैं, वह देश पुण्यतीर्थ बन जाता है, वे जो उपदेश करते हैं, वह पावन शास्त्र हो जाता है; वे जिन कर्मों को करते हैं, वही कर्म सत्कर्म समझे जाते हैं।

वे स्वयं सदैव परमात्मा में स्थित रहते हुए जगत के अनन्त दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिये आनन्द की धारा बहाते रहते हैं। उनकी वाणी से निरंतर ज्ञानामृत झरता है, उनके नेत्रों से प्रेममयी शीतल सुखद ज्योति निकलती है, उनके मस्तिष्क से जगत का कल्याण प्रसूत होता है, उनके हृदय से प्रेम एवं आनन्द के स्रोत (झरने) फूटते हैं। उनके हाथों से आशीर्वाद बरसता है। जिस पर उनकी दृष्टि पड़ती है, वह पावन हो जाता है। जो उनके सम्पर्क

में आ जाता है, वह पाप-ताप से मुक्त होकर महात्मा बन जाता है!

वह स्थान धन्य है जहाँ वे रहते हैं, वह माता धन्य है जिसकी कोख से वे प्रकट होते हैं, वह मनुष्य धन्य है जो उनके सम्पर्क में आता है, वह वाणी धन्य है जो उनका स्तवन करती है, वे आँखें धन्य हैं जो उनका दर्शन करती हैं और वे कान धन्य हैं जिनको उनका उपदेशामृत-पान करने का अवसर मिलता है!

ऐसे ही संत महात्माओं द्वारा समस्त दुःखों के मूल अज्ञान का नाश होता है। महात्मा जड़ भरत ने राजा रहूगण को उपदेश करते हुए यह बिलकुल खोलकर कहा है:

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥

(श्रीमद्भागवत् ५–१२–१२)

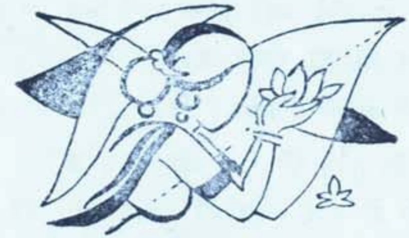
"रहूगण! महपुरूषों के चरणों की धूली से अपने को नहलाए बिना केवल तप–यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादि के दान, अतिथि–सेवा, दीन–सेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्य की उपासना आदि किसी भी साधना से यह परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।"

ऐसी महिमा है इन महापुरूषों की! धन्य हैं ऐसे महापुरूष जिन्होंने अपने सब स्वार्थों की, मोह–ममता की होली जलादी और त्याग की पराकाष्ठा पर पहुँच कर दुस्तर

माया से पार हो गए तथा मनुष्य के अंतिम लक्ष्य उस परम निर्भय पद में आरूढ़ हो गए! लाख-लाख वन्दन हैं ऐसे महापुरूषों को जो संसार-ताप से तपे अन्य लोगों को भी उस परम निर्भय पद की ओर ले चलते हैं! कोटि कोटि प्रणाम है ऐसे महापुरूषों को जो अपनी ब्रह्मानन्द की मस्ती को छोड़कर भी दूसरों की भटकती नाव को किनारे लगाने में मददगार बनते हैं!...और वे भी धन्य हैं जो उनकी इस लीला में लीला-सहभागी बनने का स्वर्ण अवसर प्राप्त करते हैं!

❀ ॐ आनन्द ❀





✖ भक्तों के भाव ✖

आज तक पूज्य श्री के संपर्क में लाखों लोग आ चुके हैं और उन्होंने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से हर प्रकार का लाभ उठाया है। कभी उनकी आपस की बातचीत एवं कभी उनके स्वयं के बताने पर जो अमूल्य अनुभव ज्ञात होते रहते हैं, उनमें से कुछ यहाँ संकलित किये जा रहे हैं:

फिर अदृश्य हो गए

७० वर्ष की उम्र के वयोवृद्ध सज्जन कर्मचन्द नोताणी का अहमदाबाद में बिजली के उपकरणों का होलसेल व्यापार है। ये पहले सिंध में विख्यात सामाजिक कार्यकर्ता भी रह चुके हैं। पूज्य श्री के प्रति इनमें अच्छी श्रद्धा होने से ये आश्रम में उनके दर्शनार्थ आते रहते हैं। एक बार रात्रि को कर्मचन्द भाई बाथरूम में अशक्ति के कारण बैठे तो उठ ही नहीं पाए। उस समय अपने परिवार के लोगों को सहायता के लिये उन्होंने खूब पुकारा, मगर सब प्रगाढ़ निद्रा

में सोये हुए थे-कोई नहीं आया। आखिर असहाय होकर हृदय से पूज्य श्री को पुकार उठे :

"साई अशाराऽऽमऽऽ!"

इतने में तुरंत ही पूज्य श्री के दर्शन हुए। पूज्य श्री को देखते ही वे भावविभोर हो उठे। पूज्य श्री ने कहा-

"उठो!"

और उन के ऐसा कहने के साथ ही कर्मचन्द भाई कहते हैं कि मैं उठ खडा हुआ। उस समय मेरी कमजोरी न जाने कहाँ चली गई थी!

इसी प्रकार मुझे दूसरी बार हॉस्पीटल में ऑपरेशन कराते वक्त पूज्य श्री की बहुत याद आई। जब ऑपरेशन शुरु हुआ तब एकाएक पूज्य श्री न जाने कहाँ से आकर मेरे सम्मुख खडे हो गए। ऑपरेशन थियेटर में ऑपरेशन के वक्त किसी भी अन्य व्यक्ति का आना निषिद्ध है और दरवाजा भी बन्द ही रहता है, मगर पूज्य श्री तो न जाने कहाँ से और किस दरवाजे से आये थे और ऑपरेशन पूरा होते ही वहाँ से अदृश्य हो गए।

-श्री कर्मचन्द नोताणी, ठक्करनगर

अन्तर्संवाद द्वारा प्रश्नों के जवाब

उक्त कर्मचन्द भाई के सुपुत्र रमेशभाई के हाथ पर पट्टा बांधा हुआ होने से पूछा गया, तो उन्होंने बतायाः

"स्कूटर पर से गिरने से हाथ उतर गया था।"



जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।
गलत है कि दीदार (दर्शन) की आर्जू है।
गलत है कि मुझको तेरी जूस्तजू (इच्छा) है॥
तेरा जलवा (तेज) ऐ जलवागर कुबरू (सर्वत्र) है।
हुजूरी हैं हर वक्त तू रुबरु है॥



जो मस्त हैं अज़ल (स्वरुप में) के उनको शराब क्या है!
मक़तूल-खातिरो (क़त्ल-दिल) को वृण कबाब विषयानंद क्या है!



बाहर कहीं सुख नहीं है, सुख भीतर ही है।
अपने भीतर डुबकी लगाओ, ध्यान करो।

"फिर ?"

"फिर क्या....? स्वामी आशारामजी का नाम लेकर मैंने एक झटका हाथ को मारा तो हाथ सीधा हो गया। इस पर अभी ज्यादा जोर न आवे, इसलिये पट्टा बांध रखा है।

"सुन्दर ! और भी कोई अनुभव आपको हुआ हो तो....?"

"पहले मुझे सिनेमा जाने का बहुत शौक था। पूज्य श्री के परिचय में आने के बाद अब मुझे वह शौक रहा नहीं। जब मैं अपने मित्र के साथ इधर आता हूँ तो रास्ते में हमारी क्या बातचीत हुई, इसकी चर्चा फिर सत्संग में करते हैं। न जाने उन्हें कैसे पता चल जाता है। मुझे सत्संग में ही बिना पूछे प्रश्नों के जवाब अपने आप मिल जाते हैं।" पूज्यश्री की इस अतिन्द्रिय शक्ति का अनुभव और भी कईयों को हो चुका है।

अनोखी कृपा के धनी

४४ वर्ष के वडोदरा के श्री नथुमल चेतूमल आस्वानी किसी के साथ आश्रम में आए और मात्र पांच-सात मिनट ही सत्संग सुनकर बहुत प्रभावित हुए। फिर पूरे कुटुम्ब को पूज्य श्री के दर्शन के लिये साथ ले आए। उस दिन लोगों की बहुत भीड़ थी। पूज्य श्री ने अन्दर से ही कहलाया कि अभी वडोदरा से जो कुटुम्ब आया है, उसे ही अन्दर भेजो। बिना किसी पूर्व परिचय के उनको कैसे यह ख्याल आया होगा !....खैर।

"क्या चाहिये ?" स्वामीजी ने पूछा

" प्रभु ! धंधे में बरकत नहीं है ।"

" हो जायगी ।....और कुछ ?"

"बस, आपकी कृपा चाहिये बापू ।"

इसके बाद शीघ्र ही इनको कई प्रकार के अनुभव होने लगे। उनकी आर्थिक तंगी जैसे पलक झपकते ही दूर हो गई । अकल्पनीय रूप से उनको धन मिला । धंधे का प्रश्न हल हो गया । फिर तो उन्होंने रेल्वे का पास भी निकलवा लिया, ताकि हर रविवार को स्वामीजी के दर्शन एवं प्रवचनों का लाभ ले सके ।

करूणासागर

कपड़े के एक बड़े व्यापारी करीब ४६ वर्ष के जियालाल भाटिया जो बचपन से ही पूज्य श्री को जानते हैं, कुछ समय से आश्रम में साधना कर रहे थे। उन्होंने कहाः

"अनुभवों की बात ही मत पूछो । अपार अनुभव हुए हैं ।"

"फिर भी कुछ....।"

"क्या बताऊँ...? समझो कि पहाड़ से खाई में गिरते हुए मुझे पूज्य श्री ने सम्हाल लिया । मेरा लाखों रुपयों का धंधा चलता है, उसकी बहुत चिंता थी । एक ऐसा समय आया कि अपने ही पराए हो गए । ऐसी घड़ी में पूज्य श्री की आँख से आँख मिली तो मैं निश्चित हो गया । उनका मेरे ऊपर हाथ आने से पूरा जीवन ही बदल गया है ।....दूसरे अनुभवों की बात और किसी समय करना ।"

ऐसा कहते वक्त उनकी आँखों में से जो शांति और दृढता झांक रही थी उसे देखकर पूज्य श्री के प्रति उनके अहोभाव का सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता था । जब भी आश्रम में बहुत भाव में आने से भक्त लोग कीर्तन करते हैं, तो जियालाल अपने को रोक नहीं पते और सब के बीच खड़े होकर नाच उठते हैं ।

वत्सल मददगार

२८ वर्ष की एक सत्संगी बहन आश्रम में नियमित सत्संग के लिये आती रहती है । वह बोलीः

"मैं तो यहाँ आकर सुखी सुखी हो गई हूँ ।"

"कैसे ?"

"पहले मेरी पति से नहीं बनती थी । मै आश्रम में आती तो उनको बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था । परन्तु अब गुरूदेव की कृपा से उनको भी कई ऐसे अनुभव हुए हैं कि वे भी बदल गए हैं । वे भी अब गुरूदेव के पास आते हैं । घर में अब पूर्ण शांति और सुख है ।"

सुख और शांति के सागर के पास आने पर हृदय उल्लसित न हों तो और कहां होगा ?

सर्वव्यापक पूज्यश्री

श्री खियलदास जे. मंघोरमलाणी रिटायर्ड इंजिनीयर है

और आश्रम में नियमित आते रहते हैं । वे कहने लगे:

"मेरा अनुभव सुनोगे तो आपको हंसी आएगी । एक बार मैं आश्रम में साधना के लिये ४-५ दिन लगातर रहा था । उन दिनों एक रात्रि को बरामदे में सो रहा था कि किसी हिंसक जानवर की भारी आवाज सुनकर मेरी आँख खुल गई । उस समय करीब दो सवा दो बजे होंगे ।"

"अच्छा, फिर !"

"मुझे बड़ी घबराहट होने लगी । फिर फिर से वही आवाज आने और बढ़ने लगा । अब तो मेरे भय का पार नहीं रहा । मैंने पहले सुन रखा था कि बापू तो रात को भी आश्रम में सतत उपस्थित रहते ही हैं, तो मुझे भयभीत क्यों होना चाहिये–ऐसा विचार आया ही था कि बापू भी कम्पाउन्ड में आते हुए नजर पड़े । वह आवाज भी बन्द हो गया । परन्तु थोड़ी देर बाद फिर से आवाज आने लगा । फिर से मेरा भय लौट आया । मगर मुझे फिर से बापूजी के दर्शन हुए । अब मैं समझ गया कि बापूजी हर समय नजर रखते हैं, तो मुझे भयभीत क्या होना चाहिये ?" बस, फिर तो मेरा सारा भय और शंका दूर हो गई ।

जीवनतारक

३० वर्ष के बच्चुमल हरवाणी ने अपना एक विचित्र अनुभव बताया । वे एक बार नदी पार करके आश्रम आ रहे थे । उन्होंने कहा कि नदी में आगे आने पर पानी

बहुत बढ़ गया । इससे मुझे बड़ा मन ही मन दुःख हुआ कि सांई के दर्शन करने जा रहा था और बीच में ही यह क्या हैरानगति हो गई !

परन्तु ऐसा विचार आते ही नदी में पानी एकदम नीचे उतर गया । वाह, सद्गुरु की कृपा ! यह शायद संकेत था कि जो गुरू का नाम लेकर यहां की स्थूल नदी पार कर सकता है वह संसार सागर भी पार कर सकेगा ही, इस में संदेह नहीं ।

ऐसे सद्गुरू की शरण से ही बेड़ा पार होता है ।

शक्तिसम्राट

अहमदाबाद शहर के लक्की कोल्ड्रिंक हाउस के हरी भाई के पिताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं हो रहा था । डाक्टर निराश हो गए थे सब इलाज करके । पिता बेहोश अवस्था में बिस्तर पर पड़े थे । उस समय हरीभाई कहते हैं कि मेरे एक भाईने गुरूमंत्र बोल कर पिताजी को पानी पिलाया । तुरन्त ही पिताजी ने आँखें खोली । फिर पूज्य श्री सूक्ष्म देह से उनके सम्मुख हाजिर हुए और उनका सारा रोग हर लिया ।

इस घटना के बाद काफी महीनों तक पिताजी जीवित रहे और फिर उन्होंने शरीर छोड़ा । अंत तक उनकी पूज्य श्री के प्रति बहुत श्रद्धा थी ।

ऐसे अनेक अनुभव दूसरे भक्तों को भी हुए हैं ।

शांतिदाता

श्री अशोककुमार जोशी कहते हैं कि में पहली बार बापूजी के प्रवचन में गया तो उनके मुखमण्डल पर मुझे दिव्य जगमगाता प्रकाश दिखा। उनकी ओर पहली दृष्टि से मुझे बड़ा आकर्षण और जीवन में चरम शांति का अनुभव हुआ।

अन्तर्दृष्टा

डीसा के ५६ वर्षीय शिवलाल काका पूज्य श्री के साथ कई बार प्रवास में रहते हैं और उनके भोजन की व्यवस्था प्रायः उन्हीं के हाथ में रहती है। उन्होंने अजमेर का एक प्रसंग बताते हुए कहाः

हम तीन चार भक्त स्वामीजी के साथ कार में पुष्कर से अजमेर आ रहे थे। भोजन आदि बनाने का काम मेरे जिम्मे था। अब शाम हो गई थी और मुझे मालूम था कि कुटिया पर पहुँचेंगे, परन्तु सब्जी वहाँ पर बिल्कुल है ही नहीं। इस चिन्ता में बैठा मैं यह सोच रहा था कि बीच रास्ते में कहीं सब्जी की दुकान आएगी तो गाड़ी खड़ी करवाकर सब्जी ले लूंगा। परन्तु उसी वक्त स्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहाः

"क्या चिंता करता है? अब कहीं नहीं रुकना है। सीधे कुटिया पर चलो। वहाँ बहुत सारी सब्जी रखी हुई है।"

मैं तो यह सुनकर दंग रह गया! विचार करने लगा कि स्वामीजी ने मेरे मन की बात कैसे जान ली? वास्तव में जब हम कुटिया पर पहुँचे तो वहाँ कई प्रकार की सब्जियाँ व रसोई की अन्य सामग्री का ढेर लगा हुआ था और कुछ भक्त लोग वहाँ स्वामीजी के दर्शनार्थ बैठे हुए थे।

सब चाबियों के मालिक

ऐसा ही एक दूसरा प्रसंग शिवलाल काका ने बताया

सन् १९७४ का अक्टूबर महीना था। स्वामीजी उस रात को अहमदाबाद से बीकानेर पधार रहे थे। मेरे सहित सैकडों भक्त पालनपुर के रेल्वे स्टेशन पर खड़े चिंता कर रहे थे कि स्वामीजी को हम कैसे ढूँढेंगे, क्योंकि सर्वत्र बिजली बन्द थी। परन्तु पहला आश्चर्य तो हम सबने यह देखा कि ज्योंही स्वामीजी की गाड़ी स्टेशन में प्रवेश करने लगी उसी समय एकदम सर्वत्र बिजली के बल्बों के प्रकाश से स्टेशन जगमगा उठा। सभी के हृदयों में आनन्द की लहर छा गई। बड़ी भारी संख्या में आस-पास के इलाकों से आए हुए हम सब दर्शनार्थी बडी बेताबी से पूज्यश्री की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी आने से चारों ओर बडी चहल-पहल मच-गई और 'सद्गुरू देव की जय' के गगनभेदी जयनाद से सारा वातावरण गूंज उठा।

स्वामीजी ने दर्शनार्थियों द्वारा लाए हुए फल-फूल आदि प्रसाद उन्हीं में प्रेमपूर्वक बांटना शुरू कर दिया। प्रसाद कुछ ही लोगों को मिल पाया था कि एकाएक इंजन ने व्हिसल दी और गाड़ी चल पड़ी। सारे दर्शनार्थी श्रद्धा एवं निराशा की

आँखों से स्वामीजी की तरफ देखते हुए उनके डिब्बे के साथ दौड़ने लगे।.... मगर, थोड़ी ही दूर जाकर गाड़ी एकाएक रुक गई। पुनः सबके हृदय में हर्ष की लहर दौड़ गई। अब करीब आधे घंटे तक सबने श्रद्धापूर्वक दर्शन और फूल हार करके पूज्य श्री के मुखारविन्द से अमृत वचन सुनने का लाभ लिया। इसके बाद रेल्वे के टी. टी. व गार्ड आदि ने आकर स्वामीजी से श्रद्धापूर्वक नम्र प्रार्थना की कि कृपा करके अब गाड़ी को चलने की आज्ञा दें। पूज्य श्री ने मुस्कराते हुए कहाः

"देखो! हमने तो गाड़ी की जंजीर आदि नहीं खींची है, न हम आपको गाड़ी चलाने से रोक ही रहे हैं।"

टी. टी. आदि बोलेः

"नहीं स्वामीजी, आपकी लीला से ही चलती हुई गाड़ी एकाएक रुक गई है। संत महात्मा जंजीर नहीं खींचते, परन्तु सब जंजीरों की चाबी उन्हीं के हाथ में होती है। अब कृपा करें और हमें गाडी चलाने की आज्ञा दें!"

स्वामीजीने मुस्कुराकर सत्संगियों पर एक मीठी नजर डाली और कहाः

"भाई अब तो जाने दो न?"

तब सत्संगियों ने सद्गुरूदेव की जयजयकार करते हुए भाव भीने हृदय से स्वामीजी और गाडी को विदा दी।

उन सबका एक साथ हाथ उठाना और गाड़ी का चल पड़ना, स्वामीजी की ऐसी लीला लग रही थी मानो गाड़ी के चलने की चाबी स्वामीजीने सत्संगियों के हाथ में दे रखी हो।

फिर तो आगे आने वाले छोटे-मोटे सभी स्टेशनों पर रेल्वे के कितने ही अधिकारी एवं अन्य यात्री लोग पूज्य श्री के दर्शन एवं उनसे प्रसाद पाकर अपने को धन्य धन्य मानने लगे!

भारी विपत्ति से रक्षा

पूज्य श्री के बारे में एक होटल के मालिक भाई सीरूमल को बड़ा ही विचित्र अनुभव हुआ। इस अनुभव के बाद तो उनकी श्रद्धा पूज्य श्री में और भी गहरी हो गई है। वे बताते हैंः

सन् १९७६ में एक दिन जब रात को मैं प्रगाढ़ निद्रा में सोया हुआ था तो न जाने सपना था या क्या, मैंने देखा कि कमरे में स्वामीजी पधारे हैं और मुझे कह रहे हैं, 'अरे क्या कर रहा है? ईधर आ....मेरे पास बैठ।' मैं जब उनके पास गया तो उन्होंने पूछा, 'स्नान किया है?' मेरे 'ना' कहने पर उन्होंने कहा-'अच्छा उधर ही बैठे रहो।'

मैं विचार करने लगा कि देखो, स्वामीजी को वैसे कई बार घर पधारने के लिये आग्रह किया तो वे पधारे नहीं और आज अपने आप ही पधार गए हैं-'मैं कितना

सौभाग्यशाली हूँ ! इतने में तो स्वामीजी ने मुझे चेतावनी के स्वर में कहा–

"तू यहां आराम कर रहा है और उधर होटल में क्या होने वाला है, उसकी तुझे कुछ चिंता भी है कि नहीं ? जा, जल्दी होटल पर और जो दूध आया है वह किसी को मत पिलाना । वह विषैला हो गया है । उसे फिकवा देना । समझे कि नहीं....?"

इतना सुनना था कि मैं तो हडबड़ाकर उठ खड़ा हुआ । जागा तो बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह मैंने कोई सपना देखा है या वास्तव में स्वामीजी पधारे थे । उस समय करीब साढ़े चार बजे थे । मैंने जल्दी–जल्दी कपड़े पहने और दुकान पर पहुँच गया ।

मेरी होटल में सुबह ही सुबह ढ़ाई मन दूध आता है । दुकान पर पहुँचा तो कुछ दूध गर्म करके चाय आदि बनाकर लोगों को पिलाने की तैयारी की जा रही थी । मैंने वह सब रुकवा दिया और उसमें से कुछ दूध एक कुत्ते को पिला दिया । आधा घंटा भी नहीं बीता था कि वह कुत्ता एक पेड़ के नीचे मरा पड़ा मिला । फिर तो सारा दूध कपड़े से छाना गया । छानने पर उसमें से एक छिपकली मरी हुए मिली । उसी के जहर का इतना असर था ।

यदि स्वामीजी की अदृश्य कृपा न होती, तो उस दिन विषैला दूध पिलाने के अपराध में मेरे दोनों हाथों में

लोहे के कंगन (हथकड़िया) पहनने का अवसर आ उपस्थित हुआ था ।

मेरी होटल पहले ठीक नहीं चलती थी । कुछ हजार का कर्जा भी ऊपर हो गया था । होटल के बाहर खूब गुण्डा–गर्दी व झगड़े–फिसाद चलते थे । होटल के कई सरकारी केस आदि भी बन गए थे । मैं तो बड़ा निराश सा हो गया था । मगर स्वामीजी कृपा से दुकान के बाहर होनेवाली सब गुण्डा–गर्दी खत्म हो गई है । सरकारी केस भी जो दुकान के थे, उनका मेरे पक्ष में फैसला होकर सुलझ गए हैं । अब स्वामीजी के बताए अनुसार ध्यान–भजन आदि करता हूँ तो मेरे पारीवारिक, सामाजिक, आर्थिक और व्यक्तिगत सभी कष्ट शांत हो गए हैं । यह सब पूज्य श्री स्वामीजी के आशीर्वाद का प्रताप है कि इस प्रकार मेरे जीवन में भविष्य में आनेवाली विपत्तियों से मैं कई बार बचा हूँ और समय समय पर मुझे उनकी सत्प्रेरणा मिलती ही रहती है ।

अद्भुत लीला बापू की

बड़ौदा की एक बहन जयश्रीने अपना अनुभव बताते हुए कहाः

करीब दो वर्ष पूर्व स्वामीजी ने हमारे घर पधार कर हम पर बड़ी कृपा की थी । उसके बाद तो मुझे अजीब अजीब चमत्कार देखने को मिले ।

एक बार हमारी हाउसिंग सोसायटी में पानी की बड़ी तंगी हो गई। स्नान की तो बात छोड़ो, पीने का पानी भी नहीं बचा। नलों के कान खूब उमेठे, पर उस दिन तो पानी उनमें हो तो आवे ! पानी बिना बच्चे रोने लगे। मैं बाथरूम में गई, परन्तु प्लास्टिक की बड़ी बाल्टी एकदम खाली पड़ी थी। एक खाली लोटा लेकर आसपास पड़ोस के घरों में घूम आई, पर एक लोटा भी पानी नहीं मिला। अब क्या करूँ....ऐसा सोच ही रही थी कि पूजा-गृह में रखे स्वामीजी के चित्र पर मेरी नजर पड़ी। वे मुस्करा रहे थे– शायद इस भाग दौड़ में मुझे परेशान देखकर हँस रहे थे। मैं भी अब कोई चारा न देखकर उनके सम्मुख जा खड़ी हुई और उलाहना के स्वर में बोली:

"बापू ! आप हँस रहे हैं और पानी के अभाव में हमारा सबका क्या हाल हो रहा है–यह आपको क्या खबर ? आपके आश्रम के पास तो पूरी साबरमती नदी बह रही है, इसलिये आपको क्या फिक्र ?"

इस प्रकार बापू के चित्र के आगे मैं बड़ी भावविभोर हो उठी। फिर न जाने कैसे मेरे मुंह से निकल पडा:

"बापू....। आप तो जगत के मालिक हैं। अनन्त अनन्त ब्रह्माण्डों को चलाने वाले हैं। क्या आज साबरमती से थोड़ा सा पानी भी हमें नहीं भेज सकते...?"

थोड़ी देर बाद मैं वहाँ से हटी और फिर घर में इधर उधर घूमकर जब बाथरूम में गई तो यह देखकर

मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा कि वह प्लास्टिक की बड़ी बाल्टी पानी से लबालब भरी हुई पड़ी थी। नल को टटोला तो बन्द पड़े थे। अभी घर में कोई दूसरा आया भी नहीं था। फिर... तो यह सब हमारे पूज्य श्री स्वामीजी की अद्भुत् लीला थी ! उन्होंने मेरी प्रार्थना सुन ली थी।

जयश्री ईश्वरलाल. ओ. भारवानी
तरसाली म्युनिसिपल को. हा. सोसायटी, बड़ौदा

स्वामीजीने मेरी प्राण रक्षा की

बहुमूल्य साड़ियों के व्यापारी श्री मुरलीभाई ने स्वामीजी द्वारा स्वयं की प्राणरक्षा की घटना बताते हुए कहा:

एक बार मैं स्वामीजी को ठक्करनगर में हमारे घर पैर घुमाने को ले गया था। घर में मैंने ऊपर की मंजिल पर उन को आसन पर बिठाया और ओड़स पड़ोस के कई लोग भी उनने दर्शन आदि के लिये आकर सामने बैठ गए। थोड़ी देर पहले बरसात हो चुकी थी। अतः दीवालें आदि पानी से भीगी हुई थी, उस समय जो बिजली का बल्ब था, वह ऐसी जगह था कि प्रकाश ठीक से नहीं आ रहा था। अतः मैंने बल्ब सहित बिजली का तार पकड़ा और ऊपर कपड़े सुखाने के तार को पकड़े हुए एक लोहे की कुर्सी पर चढ़ गया। पानी से गीले ऐसे वातावरण में हाथ को ऊपर उठाकर मैं बल्ब को ऊपर लटकाने जा ही रहा था कि न जाने कैसे बिजली के करन्ट ने मुझे भी पकड़ लिया।

मैं तो वहीं जड़ सा हो गया । मुझे लगा कि अब मैं नहीं बचूँगा। इतने में तो स्वामीजी की नजर मुझ पर पड़ी और वे दूर से ही बोले:

"अरे-अरे देखो, वह भगत बेचारा बिजली से चिपक गया है !" और उन्होंने अपने कमण्डलु में से पानी लेकर मुझ पर छाँटा । एकाएक बिजली के करन्ट की पकड़ से छूटकर मैं गिर पड़ा। लोगों ने मुझे सम्हाल लिया । उस दिन करन्ट के जिस कष्टदायक अनुभव से मैं गुजरा हूँ, वह आज भी मुझे याद है और गुरुदेवने किस प्रकार मेरे को मौत के मुंह से बचाया है-उसका स्मरण होता है तो हृदय भाव से भर उठता है। वाह ! मेरे पूज्य सद्गुरु देव !!

—मुरली धनोमल गुलवानी
ठक्करनगर, अहमदाबाद

आशीर्वाद से पुत्रप्राप्ति

परसराम खटनमल फ्रूटवाला आश्रम के सेवाकार्यों को बड़ी श्रद्धा से करता है। उसने अपना अनुभव बताते हुए कहा:

मेरे कोई लडका या लड़की नहीं थी । इधर उधर कोशिश भी की थी कि किसी के आशीर्वाद से यह इच्छा पूरी हो जाए तो अच्छा हो, मगर कुछ नहीं हुआ । अपना भाग्य ही ऐसा होगा-यह सोचकर प्रयास करना ही मैंने छोड़ दिया था ।

एक बार ऐसे ही प्रेरणा हुई कि पूज्य श्री के दर्शन

के लिये जाया जाय । क्योंकि कई लोग जाते रहते थे । आश्रम में जाकर ज्योंही मैं पूज्य श्री को झुका त्योंही उन्होंने मुझे निहार कर कहा-

"क्यों, तुम्हारे पुत्र-वुत्र कोई संतान है कि नहीं ?"

यह प्रश्न सुनकर मैं तो चौंकपड़ा ! क्योंकि मैं इस बात के लिये तो आया ही नहीं था मैंने कहा-

"नहीं, अभी तक तो नहीं है सांई...।"

"नहीं है तो अब हो जायगा जा...।"

उन्होने बड़े प्रेम भरे स्वर में कहा । पूज्य श्री का ऐसा आशीर्वाद उस दिन मिला तो हृदय गद्गद् हो उठा । उसके बाद बाद शीघ्र ही हमको एक लड़की और एक लड़का पूज्य श्री के आशीर्वाद स्वरूप मिला ।

पहले फ्रूट का धंधा भागीदारी में था। फिर सांई की प्रेरणा हुई कि अपना स्वयं का करो । उसके बाद मैंने अपना स्वतंत्र यह फ्रूट का होलसेल व्यवसाय शुरू किया है। सांई की कृपा से धंधा अच्छा चल रहा है । आगे आने वाले कार्यों में सांई की सद्प्रेरणा भी मिलती रहती है । ...और हमें चाहिये भी क्या ?

—परशराम खटनमल फ्रूट मर्चेंट
ठक्करनगर, अहमदाबाद

बिना वाहन दक्षिण भारत में दर्शन

खोखरा महमदाबाद में रहने वाली जेठीबेन अपने

परिवार सहित एक बार दक्षिण भारत के कुछ तीर्थों में भ्रमण करके जब लौटी तो आश्रम में आकर उसने बताया–

मैं अपने पूरे परिवार के साथ यात्रा पर गई थी। कुछ दिन तो ठीक से यात्रा में बीते, फिर इधर की याद सताने लगी कि कब घर लौटें ? इधर उधर यात्रा में यह सब सामान–बच्चे आदि साथ में लेकर अनजान रास्तों आदि पर घूमना....मतलब बड़ी परेशान हो गई।

एक रात को बड़ी व्याकुल होकर स्वामीजी को याद करके कहने लगी कि "महाराजजी ! यह मैं कहाँ फंस गई हूँ ? अब तो ऐसा कुछ हो कि जल्दी सब घर पहुँचे और आपके आश्रम में जाकर दर्शन करें। ऐसे तो बहुत तीर्थों में घूमे, मगर जो शांति वहाँ आश्रम में मिलती है, वह इधर उधर कहाँ ?"...इतने में तो मैं क्या देखती हूँ कि साक्षात् महाराजजी मेरे सामने आकर खड़े हो गए हैं और मंद मंद मुस्कुरा रहे हैं ! अरे, कहाँ तो गुजरात और कहाँ यह दक्षिण का दूरस्थ स्थान ! यहाँ स्वामीजी कैसे पधारे ? बड़ा विस्मय हुआ ! विचार आया कि देखो, याद करते ही स्वामीजी यहाँ हाजिर हो गए ! उनको भक्तों की कितनी चिंता है ? और इसके लिये न तो उनको रेलगाड़ी या बस की राह देखने की जरूरत और न ही कोई दरवाजा या ताला खोलने के लिये चाबी आदि की जरूरत। ऐसे तीर्थ स्वरूप स्वामीजी को छोड़कर हम इधर ऊधर शांन्ति के लिये जड़ तीर्थों में घूम रहे हैं ! कितनी उनकी कृपा

कि यहाँ भी दर्शन दिये ! मेरी सारी चिंताएँ उनके दर्शन मात्र से दूर हो गई।

उसके बाद तुरंत ही हमने वापस लौटने के टिकट खरीदे और शीघ्र ही अहमदाबाद आ पहुँचे। स्वामीजी ने मुझ पर ऐसे कई बार संकटों के समय कृपा की है।

—जेठी बहन
७ अे. हाटकेश्वर को हा. सोसायटी
खोखरा, महमदाबाद, अहमदाबाद

पूज्यश्री में श्रद्धा से कार्यसिद्धि

सुरेशकुमार भावनगर की टेक्नीकल कालेज (D. T. M के ESM 4th) में पढ़ते हैं। वे सन् १९७८ में उत्तरायण के ध्यान–योग शिविर में आए थे और बहुत आध्यात्मिक लाभ लेकर गए। एक बार उन्होंने बताया:

मेरी बड़ी तीव्र इच्छा यहाँ आश्रम में आने की काफी समय से हो रही थी, परन्तु कॉलेज से अवकाश नहीं मिल पा रहा था। इस गत ध्यानयोग शिविर में आते समय एक ही दिन का अवकाश था कॉलेज का। फिर भी मैंने स्वामीजी का मन ही मन ध्यान करके यह निर्णय लिया कि पढ़ाई में ४–५ रोज की जो भी हानि होगी, वह सब स्वीकार करते हुए भी इस बार शिविर में अवश्य जाऊँगा। मेरे मित्रों ने भी मुझे समझाया कि इन दिनों जाना ठीक नहीं, क्योंकि नये प्रेक्टीकल्स आदि जो प्रोफेसर बताएंगे

उनमें तुम अनुपस्थित रहोगे तो परीक्षा में बड़ा नुकसान होगा । परन्तु पहले से ही स्वामीजी के बारे में कई आश्चर्यजनक घटनाएं आदि सुनकर मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि ईश्वरी मार्ग पर चलने वाले को कभी कोई घाटा नहीं हुआ है । अतः मैंने किसी की भी नहीं मानी और आँख मूंदकर शिविर में चला आया ।

जब शिविर में से वापस लौट रहा था तो मन में थोड़ा सन्देह उठा कि कॉलेज में मेरे पीछे न जाने कितनी पढ़ाई आगे बढ़ चुकी होगी, परन्तु जब भावनगर पहुँचा तो पता लगा कि ४–५ रोज पढ़ाई आदि हुई ही नहीं । कभी तो प्रोफेसरों ने किसी कारण से पढ़ाया नहीं और कभी लड़कों ने क्लास छोड़ दी । जो पढ़ाई हुई वह मेरे पहुंचने के बाद ही शुरू हो सकी ।

यदि मैं हिम्मत न करता तो शिविर के लाभ से वंचित ही रह जाता । शिविर में आने से मुझे जीवन के प्रति एक सजगता प्राप्त हुई है जो एक बहुत बड़ी उपलब्धि है । मुझ पर स्वामीजी की अथाह कृपा है । धन्य है उसे जो मुझे स्वामीजी से सम्बंधित होने में मददगार या निमित्त बना !

—सुरेशकुमार धनजीभाई पटेल
टेकनीकल कॉलेज, भावनगर (गुजरात)

हम सब को नवजीवन मिला

एक बार भाई श्री श्यामसुन्दर सोनी उत्तर प्रदेश से

सपरिवार स्वामीजी के दर्शन करने आए । स्वामीजी बाहर पधारे हुए थे । श्यामसुन्दरभाई ने आश्रम के कार्यालय में आकर अपना परिचय बताते हुए अपना स्वस्थ होने का अनुभव बतायाः

मुझे हार्ट अटेक का रोग था । शरीर में कुछ छोटे मोटे अन्य रोगों के साथ कमजोरी भी काफी थी । इलाज भी खूब कराए, मगर कोई इलाज कारगर सिद्ध नहीं हुआ । इस से मैं अपने जीवन से बड़ा उचाट और उत्साह हीन हो गया था । एक दिन किसी के द्वारा स्वामीजी के बारे में मुझे थोड़ा साहित्य प्राप्त हुआ । वह पढ़कर ही मुझे स्वामीजी में गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो गई । मैंने स्वामीजी को मेरे रोग एवं उत्साहहीनता के बारे में लिखा तो स्वामीजी ने रोग का बड़ा ही विचित्र इलाज किसी से लिखवाकर भेजा । उन्होंने प्राणायाम का एक प्रकार लिख भेजा था और आगे कहा था कि 'सुबह शाम सीटी (व्हीसल) बजा कर जोर जोर से खिलखिला कर हंसना । तुम्हारे सारे रोग भाग जाएंगे । जीवन में प्रसन्न रहना ईश्वर की सब से बड़ी भक्ति है ।'

मैंने यह नुस्खा अपने डाक्टरों को बताया तो वे बोले कि हम तुम्हारे रोग का असली कारण इतने नजदीक से तुमको देखकर भी नहीं ढूंढ पा रहे हैं तो स्वामीजी ने कैसे तुमको बिना देखे ही....। खैर मैंने प्रयोग किया और इतना सफल हुआ वह प्रयोग कि मैं जो पहले २०–२०,

२५–२५ दिन तक बिस्तर से भी न उठ पा रहा था अब शान से अपनी डयूटी पर जाता हूँ और आज भी स्वामीजी का ही यह प्रताप है कि अपने पूरे परिवार के साथ यहाँ आश्रम में स्वामीजी के दर्शनार्थ पहुँच पाया हूँ ।

जब मैं अस्वस्थ था, मेरा सारा परिवार मेरी वह रुग्ण अवस्था देखकर उदास और मायूस रहता था, क्योंकि रोग का सही कारण पकड़ में नहीं आ रहा था । पत्नी–बच्चे सब अपने अंधकारमय भविष्य की कल्पना करके दुःखी और भग्न–हृदय हो रहे थे । मगर मैं आज हंसता–खेलता अपना सब कार्य करते हुए दूर (प्रवास) कर रहा हूँ तो इन सब के चेहरे खिले हुए हैं । मेरे ऐसे स्वास्थ्य को देखकर तो मेरे डाक्टर भी आश्चर्यचकित है ! स्वामीजी ने मुझ अकेले को ठीक नहीं किया, मेरे सारे परिवार और उससे सम्बंधित अन्य रिश्तेदारों आदि सबको उत्साह और नवजीवन दिया है ।

—श्यामसुन्दर सोनी, इन्सपेक्टर ऑफ....
६६–४ साऊथ टी. टी. नगर, भोपाल (उ. प्र)

स्वामीजी हमारा कितना ध्यान रखते हैं !

भाई श्री प्यारेलाल आर. रेलवे में क्लर्क हैं । सप्ताह में ५ बार स्वामीजी के दर्शन करने व सत्संग का लाभ लेने हेतु सपरिवार आते रहते हैं । वे कहते हैं:

मैं स्वामीजी को भगवान करके मानता हूँ, क्योंकि

मुझे कुछ ऐसे ही अनुभव हुए हैं । उनमें से कुछ मैं आप को बताता हूँ । एक बार मैं अपने किसी सम्बंधी को लेने के लिये मन्दसौर में दलोदा रेलवे स्टेशन पर उतरा । वहाँ से मुझे लदूसा गाँव जाना था । मैंने पत्र भी लिखा था, पर मुझे लेने वहाँ कोई नहीं आया । अब मैं बड़ा परेशान हुआ, क्योंकि गाँव का रास्ता बड़ा भूलभुलैया वाला है । अब क्या होगा ?... खैर, मैं चल पड़ा । आगे जाकर तीन दिशाओं में रास्ता फंटता था । वहाँ जाकर फिर मनमें चिंता सवार हुई कि अब किधर जाऊँ ? सारा स्थान निर्जन था । दूर दूर तक कोई बस्ती अथवा कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता था । किसको पूछूं मार्ग ? अनायास ही मन के भीतर स्वामीजी की याद आई । बस, थोड़ी ही देर में देखता हूँ कि कोई सामने से चला आ रहा है और मेरे पास आकर रुक गया । उसने मुझे मेरा रास्ता बता दिया और मैं आगे चल पड़ा । थोड़ी दूर जाकर पीछे मुड़कर देखा, मगर वह व्यक्ति दुबारा नहीं दिखाई दिया ।

आगे जाकर फिर रास्ता तीन भागों में फँट रहा था । अब फिर वही समस्या ? आसपास देखा, कोई नहीं था । स्वामीजी को भीतर ही भीतर याद किया कि भगवान मुझे कुछ रास्ता सुझाओ कि किधर जाऊँ ? इतने में देखता हूँ कि फिर कोई सामने से चला आ रहा है । उसने मुझे रास्ता दिखाया और मैं फिर चल पड़ा । थोड़ा आगे गया

तो एक विचार मन में बिजली की भांति कौंध उठा कि अरे! यहाँ आसपास कोई नहीं है, फिर ये दो-दो बार मुझे रास्ता बताने वाला कौन और कहाँ से टपक पड़ता है? तुरन्त मैंने पीछे घूमकर देखा, परन्तु रास्ता निर्जन था। दूर दूर तक कोई भी दिखाई नहीं दिया। तो वह आदमी कहाँ गया और कौन था? मैं भी कैसा नादान रहा कि दो बार अपना स्वार्थ पूरा करता रहा और उस व्यक्ति से कोई नाम पता या अन्य कोई पहचान भी नहीं पूछी!

अवश्य ही वे स्वामीजी थे अथवा उनकी प्रेरणा का ही कोई अंग था जो मेरी इस निःसहाय अवस्था में सहायक बना था, अन्यथा इस निर्जन स्थान में मैं भटक जाता।

ऐसी ही घटना मेरे परिवार के सदस्यों के साथ भी घटी है। एक बार सुबह ही सुबह मैं चाय आदि पीकर थोड़ा आराम कर रहा था कि मेरी आँख लग गई। मेरी आँख तब खुली जब मेरी पुत्रवधु मुझे जगा रही थी और कह रही थी पप्पाजी! पप्पाजी!! उठो...देखो स्वामीजी आए हैं।

स्वामीजी आएं और मैं ऐसे ही पड़ा रहूँ? नहीं हो सकता! मैं उठा और सोचा कि कहाँ हैं–पहले उन्हें प्रणाम करूँ, इतने में तो पुत्रवधू बोली कि वे दरवाजे से बाहर जा रहे हैं, आप जल्दी करें! मैं भी दौड़ा और पुत्र वधू भी दौड़ी, परन्तु कुछ हाथ नहीं आया। स्वामीजी द्वार से बाहर जाते-जाते अदृश्य हो गए थे। बाहर कोई नहीं था।

ऐसे ही मेरी पत्नी भगवती को भी घर पर स्वामीजी के दर्शन हुआ करते हैं। एक बार ज्योंही स्वामीजी के उसे दर्शन हुए तो वह बोलीः

'स्वामीजी ठहर जाओ, रुको, मत जाओ।'

परन्तु स्वामीजी हंसते हुए द्वार की तरफ जाने लगे। तो पत्नी जोर से चिल्ला पड़ी–

'ऐसे चोरी-चोरी आते हो और चले जाते हो अब की बार रुक जाओ!'

परन्तु स्वामीजी रुके नहीं, मुस्कराते हुए द्वार से बाहर निकल गए। वह दौड़ी....मगर बाहर जाते ही वे अदृश्य हो चुके थे।

हमारी कितनी खबर लेते रहते हैं स्वामीजी! उनकी कृपा से हमारे कई घरेलु संकटों में हमारी रक्षा हुई है। स्वामीजी हमारे लिये साक्षात् भगवान हैं।

—प्यारेलाल आर.

रेलवे न्यू कॉलोनी, साबरमती, अहमदाबाद

साईं की कृपा से मेरा जीवन सुधर गया

वासुदेव गागूमल ने पूज्यश्री के प्रति बड़े अहोभाव से भरते हुए अपना अनुभव इस प्रकार बतायाः

मेरी मां पहले सांई के पास आया करती थी और मुझे भी लाने की कोशिश करती थी, परन्तु मैं नहीं आता था और कुछ आउट लाइन में अपना जीवन व्यर्थ गंवा

रहा था। नौकरी में १५० रू. मिलते थे, जो बड़े अपर्याप्त थे, अतः एवं कुछ मेरी बुरी आदतों के कारण हम पर १४०००) का कर्ज हो गया था।

मेरी माँ द्वारा बहुत आग्रह के कारण जब मैं इधर आने लगा तब से समझो मेरे भाग्य का सितारा चमकना शुरू हो गया! एक बार सेठ के १५०० व १००० के दो बण्डलों में से मेरे द्वारा १०००) वाला बण्डल कहीं खो गया। मैं बहुत परेशान हुआ, परन्तु सांई को मन ही मन याद किया तो कहीं से भी १०००) रू. की व्यवस्था हो गई। वैसे तो मेरी आदतें देखकर मुझे कोई भी पैसा देने को तैयार नहीं था, परन्तु सांई की कृपा से सब हो गया।

फिर एक बार सांई ने कहा—"छोड़ो ये नौकरी-वोकरी, कुछ अपना व्यवसाय चालू करो।" मैंने कालूपुर में सांई की प्रेरणा से टमाटर का व्यवसाय चालू किया। लक्ष्मी हम पर प्रसन्न हुई और सारी परिस्थिति ही बदल गई। पहले १५० की जगह अब महीने में १०००-१२०० रू. की आमदनी हो जाती है। अधिकांश कर्ज भी उतर गया है। मेरी सगाई व शादी स्वामीजी ने करवाई। एक बहन व भाई की भी शादी हो गई। मकान नया बनवाया है। अगर सांई न मिलते तो आज हमारा घर-संसार न जाने कैसा बिखरा-बिखरा और कहाँ होता? यह सब सांई की कृपा है।

—वासुदेव गागूमल, फ्रूट मर्चेन्ट
ठक्करनगर, अहमदाबाद

केन्सर का रोग मिट गया

मेरे पिताजी को ८-१० महीनों से केंसर था। डाक्टरों ने हमको कह दिया था कि अब वे कुछ ही सप्ताह या महीनों के मेहमान हैं। सब प्रकार के फोटू लेकर इलाज आदि करके उन्होंने अपना यह निर्णय हमें बताया था। सब रास्तों से निरूपाय होकर मैं उत्तरायण (१९७९) के दिनों में यहाँ आश्रम में पूज्यश्री के दर्शनार्थ आया था। पूज्यश्री के दर्शन तो नहीं हो सके, मगर मेरे साथ हमारा जो सम्बंधी था उसने कहा कि मेरा हृदय बोलता है कि आश्रम के 'बड़ बादशाह' की मिट्टी ले जाकर पिताजी की छाती पर मलो तो काम हो जायगा।

मैंने यहाँ की पवित्र मिट्टी ले ली और पिताजी की छाती पर मली। डाक्टरों ने यह सोचकर कि अब वे बचना मुश्किल है हास्पीटल से छुट्टी दे दी, मगर उस मिट्टी ने अद्भुत् चमत्कार दिखाया। खाँसने के साथ जो खून का बलगम गिरता था वह एकदम बन्द हो गया। वह तो क्या, बीमारी के अन्य लक्षण भी सब लुप्त हो गए। डाक्टर लोग पिताजी का स्वास्थ्य देखकर हैरान हैं कि ऐसा केंसर का रोग कैसे मिट गया! यह सब हमारे पूज्य श्री की कृपा का फल है।

नथूमल चेतूमल आसवानी,
वार्सा कालोनी-बड़ौदा

पूज्यश्री के सांनिध्य में

लेखक

आत्मनिष्ठ महापुरूषों को समझना बड़ा ही दुस्तर कार्य है। उनके ऊपरी आचरण और व्यवहार से हम उनके भीतर की गहराई को नहीं नाप सकते। गहराई को नापना हो तो भीतर उतरना पड़ता है और आजतक जो भीतर उतरा है वह भीतर ही खो गया है, वापस लौटा नहीं। श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि नमक का पुतला गया समुद्र की गहराई नापने और लौटा नहीं, भीतर ही खो गया। गुरू नानक देव ने भी कहा है-

'ब्रह्मज्ञानी की गत ब्रह्मज्ञानी जाने'

तो फिर उनको जानने का क्या कोई भी उपाय नहीं है? उपाय तो है। श्रेष्ठ उपाय तो यह है कि ऐसे महा-पुरूषों का संग करें। यहाँ आश्रम में पूज्य श्री के दर्शनार्थ कई प्रकार के साधक एवं भक्त कोटि के लोग आते रहते हैं और पूज्यश्री के साँनिध्य का लाभ लेते हैं। पूज्यश्री के सांनिध्य से उनको होने वाली आंतरिक अनुभूतियाँ एवं अन्य कई वैशिष्टयपूर्ण घटने वाली घटनाओं को लेखक देखता-सुनता रहता है। उन सबका तो नहीं परन्तु कुछ का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है:

पूज्यश्री की वह दृढ़ता और आत्मविश्वास!

एकबार रात्रि को करीब ११ ।। बजे पूज्यश्री अपनी

कुटीर का द्वार खोलकर बहार पधारे और लॉन में घूमने लगे। उस समय लेखक बाहर ही खड़ा था। पूज्यश्री से सहज बातचीत में लेखक ने अपने विद्याध्ययन काल की बात बताते हुए कहा,

"बापू! बी. ए. में हमारे इतिहास के प्रोफेसर ने स्वामी रामकृष्ण और नरेन्द्र के बीच जो प्रारंभिक सम्पर्क हुआ था वह तो बताया था, मगर उनके बताने के ढंग से लगता था कि उन्हें विश्वास नहीं आ रहा है कि ऐसा भी कहीं हो सकता है?"

स्वामीजी-"क्यों, क्या कह रहे थे वे?"

लेखक-"उन्होंने कहा था कि रामकृष्ण ने नरेन्द्र को अपने पैर के अंगूठे से छुआ और छूते ही नरेन्द्र ध्यानस्थ हो गए। वे बाहरी दुनियाँ को भूल गए और अन्तर्लोक में उतर गए। उस अनुभूति के बाद वे उनके पास आते रहे।.... ऐसा पुस्तकों में वर्णन आता है। न मालूम यह सब कैसे.... फिर भी जो हमने पढ़ा, वह आपको....।"

स्वामीजी (बीच ही में)-"ऐसा बोले वे! (तीव्रस्वर में) कहा हैं वे अभी। बुलाओ उनको यहाँ। यहाँ खबर पड़ जाएगी कि कैसे होता है? बिठाओ हमारे सामने उनको। सीधा साफ तो है! (फिर धीमे स्वर में) यह अध्यात्मिक शक्ति सम्प्रेषण महापुरूष किसी में भी कर सकते हैं। चार प्रकार से महापुरूष यह शक्ति सम्प्रेषण किया करते हैं-

छूकर, प्रसाद द्वारा, दृष्टिपात करके एवं संकल्प द्वारा।

खैर, तुम्हारे वे प्रोफेसर ही नहीं, अन्य भी बहुत से ऐसे लोग हैं, जिनको ऐसी बातों की जानकारी नहीं है और जानकारी है तो विश्वास नहीं है। ऐसे लोग कितना ही संसार में रचे पचे रहें, मगर आखिर तो इस लाईन में उनको आना ही पड़ता है। अभी नहीं आए तो बाद में आएंगे। झख मारकर खिचड़ी खानी पड़ती है। वे लोग बुद्धिमान हैं जो ताजी और गर्म-गर्म खिचड़ी खाते हैं। फिर बासी करके खाने में क्या बुद्धिमानी है?"

वह बात तो उसी रात्रि को समाप्त हो गई, परन्तु जिस दृढता से पूज्यश्री ने कहा था कि 'बुलाओ उनको यहाँ अभी, यहाँ उन्हे खबर पड़ जायगी कि ऐसा हो सकता है कि नहीं' वह दृढ़ता अभी भी जब लेखक को स्मरण में आती है तो वह विचार करता है-इस प्रकार खम ठोककर ऐसी आध्यत्मिक अनुभूतियाँ कराने वाले कितने महापुरूष होंगे-और होंगे तो कितने ऐसे धन्य भागी साधक होंगे जिनको ऐसे आत्मनिष्ठ महापुरूषों का सांनिध्य मिल पाता होगा.... !

ओह ! पूज्यश्री की वह मोहकदृष्टि !

अपने दो-तीन साथियों के साथ सुभाष भाई कई बार आया करते थे। उनके सिर पर लम्बे बाल हैं और स्वयं सत्संग भी इधर-उधर अपने साथियों में किया करते

थे। एक बार वे रात्रि को आए हुए थे कि अचानक पूज्य श्री ने उनसे कहा-

"बस, ऐसे ही चलता रहेगा कि कुछ आगे भी बढना चाहते हो? क्या तुम्हें अभी तक के जीवन से संतोष है?"

सुनकर सुभाष भाई अवाक् से रह गए। उनका गला भर आया। वे कुछ बोल नहीं सके। उन्होंने शादी की नहीं है। आज तक बड़ा तितिक्षापूर्ण जीवन बिताया है, फिर भी जो शांति पूज्य श्री के सांनिध्य में मिलती है, वह और जगह कहाँ....? वस्तुतः पूज्यश्री के प्रति उनमें अगाध श्रद्धा थी और वे यह इन्तजार ही कर रहे थे कि कब वह समय आयगा जब पूज्य श्री मुझे अपने चरणों में जगह देंगे और मैं व्यवस्थित अपनी साधना उनके सांनिध्य में आगे बड़ा सकूंगा।

हॉल में थोड़ी देर शांति रही। सुभाष अपनी जगह से उठे और अपने मित्रों को एक तरफ ले जाकर अपना निर्णय उन्हें सुना दिया कि वे अब से आश्रम में ही रहेंगे।

११ दिसम्बर १९७८ की उसी रात्रि से सुभाष भाई आश्रम में ही हैं और साधना कर रहे हैं। साधक उनको सुभाष महाराज कहकर पुकारते हैं। एक बार लेखक ने उनसे पूछा कि पूज्यश्री के प्रति उनका आकर्षण कैसे हुआ तो वे बोले-

"मैं पहले २-३ साथियों के साथ आश्रम में आया करता था। जब जब भी आता था तो कुछ प्रश्न लेकर

आता था ॥ सत्संग भवन में जब मैं बैठता था तो स्वामीजी मेरी ओर एक-आध मिनट ध्यान से निहारते थे। न जाने उनकी दृष्टि में क्या मोहकता थी कि मुझे बड़ी ही शांति, मिलती थी और सत्संग भी उन्ही विषयों पर होता था जो हम सोचकर आते थे। बिना पूछे ही हमारी शंकाओं का समाधान हो जाता था। ऐसा एक बार नहीं कई बार हुआ।

सत्संग तो मैंने कई सुने और मैं स्वयं भी करता था, १०८ या १००८ अथवा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ जिनके नामके आगे टाईटिल लगे होते हैं-ऐसे संन्यासियों के प्रवचन मैं सुनता था, मगर उनकी वाणी मेरे हृदय को स्पर्श नहीं कर पाती थी। परन्तु स्वामीजी के सत्संग में मन वाणी से परे का जो आनन्द है, उसकी झलकें मिलती हैं।

जब जब भी यहाँ से मैं जाता था तो पहले तो जाने की इच्छा ही बहुत कम होती थी, फिर उधर बार बार ऐसा होता था कि कितना जल्दी स्वामीजी के पास वापस पहुँचूँ-ऐसा ही उनका कुछ आंतरिक आकर्षण था। बाद में उस रात्रि को स्वामीजी ने आश्रम में रहकर साधना करने की इजाजत दे दी। यह तो मैं बहुत समय से चाहता ही था। बस, तब से मैं यहाँ स्वामीजी का प्रत्यक्ष पावन सांनिध्य-लाभ ले रहा हूँ।"

※

बड़ बादशाह—वटवृक्ष या कल्पवृक्ष

आश्रम में भक्त लोग किसी न किसी सेवा कार्य में

जुटे ही रहते हैं। कुबेर नगर के काका मंघनदास विशेष करके वटवृक्ष 'बड़-बादशाह' को ही सजाने में व्यस्त रहते हैं। ये भाई कुछ महीने लगातार आश्रम में रह भी चुके हैं।

एक बार सत्संग भवन में सत्संग चल रहा था। काका भी अपना सेवा कार्य करके भवन में आकर बैठ गये सत्संग के बीच गुरु के प्रति अहोभाव का कोई विषय आया तो काका सुबकियां भर-भर कर रो उठे। पूज्य श्री ने उन्हें खड़ा होने को कहा और बोले,

"क्या बात है, रोते क्यों हो?"

मंघनदास बडी मुश्किल से अपना अहोभाव से भरा रोना थाम कर बोलेः

"बाबा, दीनों के उद्धारक..., मैं किस मुंह से आपकी महिमा का वर्णन....?"

"अरे कुछ बताओगे भी या यों ही बस...?" पूज्यश्री ने जरा डांट के स्वर में कहा।

सभी सत्संगी भाई मंघनदास की ओर देखने लगे। मंघनदास ने कहाः

"दो दिन से मेरे पेट में बड़ा जोरों से दर्द हो रहा था। अबतक कुछ ध्यान नहीं दिया था, मगर आज सुबह से ही बिचार कर रहा था कि कुछ न कुछ दवा तो मुझे करानी ही पड़ेगी, अन्यथा यह असहनीय पेट दर्द तो जान लिये बिना नहीं छोड़ेगा। मैं सुबह बड़-बादशाह की सेवा

कर रहा था। उस समय बीच-बीच में बड़ा जोरों का दर्द पेट में होने लगा। मैं बहुत बेचैन हो उठा। तभी अचानक भीतर से एक अवाज सी उठी-

'बेवकूफ! दवा कराने की सोच रहा है! तू आश्रम में इतनी सेवा करता है, वह किस बिश्वास से करता है? तुझे स्वामीजी में बिश्वास नहीं है?....जा, बड़-बादशाह की परिक्रमा कर और वहाँ से थोड़ी मीट्टी लेकर पेट के लगा दे!'

मुझे लगा कि मेरे भीतर से साक्षात साईं ही बोल रहे हैं। जब-जब भी मैं करुण हृदय से साईं को पुकारता हूँ तो मुझे कई बार इसी प्रकार के अनुभव होते हैं।....बस मैंने ऐसा ही किया। मिट्टी लगाने से मेरा दर्द बिल्कुल जाता रहा।"

बोलते-बोलते काका मंघनदास का गला फिर भर आया और वे रो पड़े।

आश्रम के प्रांगण में खड़े इस वटवृक्ष या कहो कल्प वृक्ष में न जाने कैसी संकल्प शक्ति पूज्यश्री की कार्य करती है कि इसकी परिक्रमा करके कई श्रद्धावान भक्तों के मनोरथ पूर्ण हुए और होते रहते हैं।

शरीर से अलग होने का अनुभव

साबरमती के पास आए हुए कालीगांव के एक भाई गुरुमुखसिंह नरायणदास आश्रम में आया करते हैं। साधना

के लिये पहले १५-२० दिन आश्रम में भी रह चुके हैं। एक बार वे बोले-

"पूज्यश्री के सत्संग का स्मरण और मनन करने से व्यवहार करते समय सुख दुःख की चोटें असर ही नहीं करती। सत्संग में पूज्यश्री बताते हैं-दृष्टाभाव अर्थात् साक्षी भाव में आ जाओ, जब भी..."

लेखक, "अच्छा...., तो क्या करते हो आप?

गुरुमुख-"कुछ नहीं... बस आत्मविचार करता हूँ। मैं शरीर-मन-बुद्धि नहीं हूँ। मैं इन सबका दृष्टा हूँ। इसी प्रकार का चिंतन-मनन करता रहता हूँ और पूज्यश्री में मेरी पूरी निष्ठा है। एक बार कमर में जोरों का दर्द उठा तो मैंने इसी प्रकार निष्ठापूर्वक चिंतन शुरु कर दिया। धीरे धीरे महसूस हुआ कि मेरे बिचार भी बन्द हो रहे हैं और कमर का दर्द कहाँ गया....न जाने! बड़ा ही विचित्र अनुभव हुआ-जैसे मैं तो शरीर से अलग ही हूँ। मुझे दर्द छू भी सकता है कभी?"

लेखक-"और भी कोई विशेष आध्यात्मिक अनुभव हुआ हो तो वह बताओ। कई दिन आप तो आश्रम में ही रह भी चुके हों।"

तब गुरुमुखसिंह ने अपनी साधना का सुन्दर अनुभव बताते हुए कहाः

सन १९७७ की बात होगी। मैं स्वामीजी के दर्शन

करने आया करता था। एक बार रात्रि को उस समय करीब १२ बजे होंगे, मैं स्वामीजी का चिंतन करते हुए बिस्तर में बैठकर सोने की तैयारी कर रहा था। न जाने कब मेरी आंख लगी या तन्द्रा आई अथवा ध्यान लगा– मुझे बड़ा विचित्र सा अनुभव हुआ।

मुझे लगा कि मैं जैसे इतना तुच्छ नहीं हूँ विशाल से विशाल होता जा रहा हूँ। इतना विशाल की पृथ्वी पाताल और आकाश भी मेरे भीतर भासने लगे और मैं इनसे भी बड़ा। अहा! तो मैं इतना विशाल हूँ और अपने को तुच्छ मान रहा था? इतने में स्वामीजी की याद आई तो मेरे सामने सफेद चादर ओढ़े हुए स्वामीजी के दर्शन हुए। वे मन्द मन्द मुस्कुरा रहे थे। उस समय मुझे ऐसा लग रहा था जैसे मैं शरीर नहीं हूँ, उत्फुल्ल हूँ, अद्भुत हूँ। मुझे कोई भय नहीं।

यह बड़ा ही अद्‌भुत अनुभव था। मुझे लगा कि इस प्रकार का अनुभव तो बड़े–बड़े योग साधकों को भी नहीं होता। यही तो वेदान्त का सार है! यह स्थिति न जाने कितनी देर रही। प्रातः जब बिस्तर छोड़ा तो हमेशा से बहुत अधिक प्रसन्न था। शरीर में कोई थकान नहीं थी। पूरा शरीर आनन्द से पुलकित हो उठा था।

ऐसा ही एक अनुभव आश्रम में जब स्वामीजी साधकों को ध्यान करा रहे थे, उस समय हुआ। साधकों में मैं भी बैठा हुआ था। अचानक मुझे लगा कि मैं शरीर में

नहीं हूँ। मैं शरीर से अलग हू–अव्यक्त और अधर। जमीन पर मेरे पैर नहीं हैं। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि ध्यानावस्थित मेरा शरीर भूमि पर पड़ा है–मृतप्राय सा। मैं जैसे अपने आप में ही विचार रहा था कि अरे गुरूमुख! तो तू यह शरीर नहीं है? फिर ये सब सम्बंधी आदि शरीर के ही हैं, तेरे नहीं हैं! तू अदृश्य है, दिव्य है, भूख प्यास रहित है! तुझमें दुःख–चिन्ताएं नहीं हैं! उस समय बस आनन्द ही आनन्द की अनुभूति हो रही थी। मगर जब ध्यान टूटा तो मैंने पाया कि मैं शरीर में हूँ। एक स्मृति रह गई कि मैं और शरीर एक नहीं अलग–अलग हैं। परन्तु वह शरीर से अलग होकर स्थित रहने का आनन्द कुछ विशेष ही था।

उसके बाद मैंने अपने आप ध्यान लगाने का और उसी प्रकार की स्थिति में जाने का बहुत प्रयास किया, परन्तु वैसा ध्यान पुनः दुबारा नहीं लगा। उस दिन तो स्वामीजी की ही वह महत्कृपा थी जो मैं ऐसा अनुभव कर सका अन्यथा तो अब तक यह पुस्तकों की ही बात थी कि तुम शरीर नहीं बल्कि शरीर से न्यारे हो। ये बड़े ही अमूल्य अनुभव हैं और इसलिये मैंने काफी समय तक किसी को बताये भी नहीं थे।

इससे पूर्व तो मैं आध्यात्मिक रास्ते पर केवल कुतर्क ही किया करता था। परन्तु इन अनुभवों ने मेरा कुतर्क करने का सब अहंकार ही तोड़ दिया है। जो आनन्द इन

अनुभवों में मिला, वह केवल शुष्क तर्कवाजी करने में कहाँ ? और न जाने मेरे जैसे कितने और भी लोग हैं जो केवल कुतर्कों में जीते हैं और इस प्रकारके आध्यात्मिक अनुभवों के प्रत्यक्ष आनन्द से वंचित हैं ।

दर्शन करूँ कि नहीं ?

बहुत सबेरे पुलिसवर्दी में एक व्यक्ति आकर आश्रम में कार्यालय के बाहर आ खड़ा हुआ । ये भाई पहले भी यहाँ एक बार आ चुके हैं । इनके पत्र स्वामीजी के प्रति बड़े ही भावपूर्ण होते हैं ! इस समय स्वामीजी अपनी कुटिया में हैं । लेखक ने उसको कहा कि अभी बैठो, स्वामीजी जब बाहर पधारेंगे तब दर्शन हो जाएंगे ।

थोड़ी ही देर में स्वामीजी की कुटिया का दरवाजा खुला तो इधर-उधर बैठे हुए दर्शनार्थी उस तरफ दौड़ पड़े । परन्तु लेखक को यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि पुलिसवर्दी में वह हवलदार शांति से अपनी जगह बैठा ही हुआ है । लेखक ने उससे कहा-

"स्वामीजी के दर्शन करने हो तो जाओ उधर, स्वामीजी की कुटिया का द्वारा खुला है । "

हवलदार लेखक के जरा नजदीक खिसक आया और बड़ी गम्भीरतापूर्वक बोला-

"दर्शन तो करने हैं, मगर पहले आपसे मैं अपनी

एक बात कहना चाहता हूँ ।.... स्वामीजी के दर्शन करने के बाद मुझे कुछ विचित्र से अनुभव होते हैं । मुझे सारा संसार सूना-सूना सा लगता है । ऐसा लगता है कि संसार में कोई किसी का नहीं । ये पत्नी-बच्चे, भाई-भतीजे सब स्वार्थ के हैं । इस असार संसार में मेरा समय बरबाद हो रहा है । ऐसे कब तक चलेगा....?

"पिछली बार जब मैं मिलकर गया था स्वामीजी से तो बादमें सारे विचार वैराग्य के आने लगे थे । फिर कुछ दिन बाद पुनः घर-संसार में रच-रच गया था ।....इसलिये इस बार मुझे ऐसा भय सा लग रहा है कि स्वामीजी के दर्शन करने के बाद वैराग्य के विचार फिर से जोर तो नहीं पकड़ लेंगे ?...इसलिये दर्शन करने में थोड़ी हिचकिचाहट हो रही है । "

लेखक-" हाँ, ऐसा फिर से हो तो सकता है । मगर आप जब जानते हैं कि दर्शन मात्र से आपको अपना परमार्थ याद आता है और संसार से मोह और आसक्ति के विचार छूटते हैं तो फिर यहाँ आए क्यों.... ? "

हवलदार-" बस यही तो बात है ! उनका कुछ ऐसा आत्मिक प्रेम है कि उनके पास आए बिना भी रहा नहीं जाता । अभी इसीलिये मन में थोड़ा भय है कि दर्शन के लिये आ तो गया हूँ, मगर अब दर्शन करूँ कि नहीं ? या ऐसे ही चला जाऊँ ?"

उसके ये विचार सुनकर बड़ा आश्चर्य भी हुआ! लेखक को उसकी सरलता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु आह! कहाँ तो लोग साधना करना चाहते हैं-भक्ति करना चाहते हैं, मगर वैराग्य के अभाव में उनकी विशेष प्रगति नहीं हो पाती– ऐसे वैराग्य के लिये ही वे ऐसे महापुरूषों की शरण लेते हैं और कहाँ यह हवलदार है कि जिसको स्वामीजी की परम कृपा से, उनके दर्शन मात्र से संसार फीका-फीका और परमार्थ ही सार्थक लगने लगता है तो भी उनके दर्शन करने से वंचित रहने की सोच रहा है! वाह रे मनुष्य का भाग्य! वाह री प्रकृति की नियति!

लेखक ने उसे समझाते हुए कहा–'देखो, तुमको कुछ भी होता है तो होने दो, घबराओ मत! क्योंकि 'ब्रह्मज्ञानी ते कछु बुरा न भया।' महापुरूषों के दर्शन से कभी किसी का बुरा नहीं होता–यह सदैव याद रखो। हिम्मत और श्रद्धा के साथ जाओ और स्वामीजी के दर्शन पाकर कृत्य कृत्य हो जाओ।"

अब आश्वस्त सा होकर वह उठा और तुरंत स्वामीजी के चरणों में जाकर उसने दण्डवत् प्रणाम किया।

इस प्रकार से स्वामीजी की अलौकिक कृपा तो बरसती ही रहती है, मगर कितने ऐसे भाग्यशाली होंगे जो उसको ठीक प्रकार से समझ कर अपना साधना का मार्ग प्रशस्त करते होंगे?

असीम है संतों की उदारता!

भक्तों के भावी हितचिन्तक 'पूज्य श्री'

पाटण तालुका के भूतपूर्व विधायक (MLA) श्री नाथाभाई रत्नाभाई देसाई कई बार पूज्य श्री के दर्शनार्थ आ चुके हैं। कुछ ध्यान योग शिविरों में भी उन्होंने भाग लिया हुआ है। एक बार लेखक ने उनसे पूछा.

"नाथाभाई, आपका पूज्यश्री के प्रति इतने आकर्षण का क्या कारण? क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र में रहे हुए लोग इतने भोले नहीं होते कि किसी के भी प्रभाव में जल्दी से आ जायं। क्या आप अपना कुछ अनुभव....?"

नाथाभाई लेखक की ओर देखकर हँसने लगे, फिर बोले–

"आप पूछते हैं तो बताता हूँ। जब से मैं पूज्यश्री के सम्पर्क में आया हूं तब से चमत्कार ऐसे देख चुका हूँ, जिनसे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि पूज्यश्री एक अलौकिक व्यक्तित्व हैं। इनमें से एक दो घटनाएं मैं आपको बताता हूँ:

१९७७ में भारत के संसदीय चुनाव होने वाले थे। आप-हम जानते ही हैं कि बड़े-बड़े नेता और मंत्री भी यहाँ पूज्य श्री के पास कई प्रकार के आशीर्वाद लेने आते हैं। उनमें से कई आध्यात्मिक लाभ भी लेते हैं। हमारे

एक मित्र करशन भाई चौधरी (भुतपूर्व रेवेन्यू मिनिष्टर) भी चाहते थे कि उस चुनाव में खड़े होवें। उन पर पहले से ही पूज्य श्री की बड़ी कृपा है और वे कई बार आश्रम में १०-१० दिन तक साधना के लिये रहा करते हैं। तो उन्होंने भी कांग्रेस उम्मीदवार के नाते टिकट मांगा और आशीर्वाद के लिये पूज्य श्री के पास आए। मगर पूज्यश्री उस समय कुछ बोले नहीं और न ही कोई उत्साह उन्होंने दिखाया। फिर उनकी अनुपस्थिति में पूज्यश्री ने साधकों के बीच बताया की करशन भाई को टिकट नहीं मिलेगा। और यह उनके लिये अच्छा ही होगा। फिर भी वे प्रयास करेंगे। अब उन्हें यदि यह कहा जाय कि आप इस बार चुनाव नहीं लड़ें, तो वे एक दम से मानगे नहीं और उन्हें अच्छा भी नहीं लगेगा। खैर....

पूज्यश्री की यह भविष्य-वाणी उस समय तो हम समझ नहीं सके, परन्तु हुआ ऐसा ही। इन्दिरा पक्ष पराजित हुआ। अच्छा हुआ कि करशन भाई को टिकट नहीं मिला, अन्यथा....। एक दिन स्वामीजीने जब चुनाव कि बात निकली तो मुझसे कहा-

"क्यों नाथाभाई! करशन भाई को चुनाव का टिकिट नहीं मिला तो अच्छा हुआ न?"

"हाँ बापू! पराजय के प्रवाह में से करशन भाई बच गए, यह अच्छा ही हुआ।" इस बात से मैं यह समझ गया कि पूज्यश्री को पहले ही से चुनाव के परिणामों का पता था।

लेखक ध्यान से नाथाभाई की बातें सुन और समझ रहा था। नाथाभाई आगे कहने लगे:

ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ था। मैं स्वयं भी १९७६ में तालुका (तहसील) पंचायत के चुनाव में खड़ा होनेवाला था। चुनाव में सफलता के लिये आशीर्वाद लेने मैं यहाँ बापू के पास आया। स्वामीजीने इधर-उधर की बातें तो की मगर चुनाव सम्बंधी आशीर्वाद देने में कोई उत्साह नहीं दिखाया। उसी समय मन में शंका खड़ी हुई कि पूज्य श्री का हृदय से कोई आशीर्वाद मिला नहीं।

और वस्तुतः उस चुनाव में मैं थोड़े मतों से हार गया। बाद में पूज्यश्री ने मुझे बताया कि आप हारने वाले तो थे ही, मगर आपने उस समय हमारे संकेत को विशेष महत्व नहीं दिया था। उस समय खुले शब्दों में कहता तो आपको रुचता नहीं। फिर आपके आने का भी वह प्रारंभ ही था।

अब जरा और नजदीक आकर नाथाभाई कहने लगे-

और अभी चेटीचण्ड़ शिविर से लौटने के करीब १५ दिन बाद एकाएक मेरे नाक से खून बहने लगा। जब किसी प्रकार रुका नहीं तो दवाखाना गया। वहाँ डाक्टर ने ४-५ इंजेक्शन दिये, फिर भी खून बन्द न हों। डाक्टर ने कहा, दवाखानेमें भर्ती हो जाओ, इसके सिवा कोई चारा नहीं है। अब तो मैं बड़ा परेशान और निराश हो गया।

जब घर आया तो मेरी नजर पू. स्वामीजी के चित्र पर पड़ी। बस, एकाएक जैसे डूबते को तिनके का सहारा

मिला हो–ऐसा महसूस हुआ। मैंने चित्र के आगे हाथ जोड़कर पू. स्वामीजी को मन ही मन याद किया और प्रार्थना की–

"बापू ! मैं तो दवा कराकर थक गया। मुझे दवाखाने में भर्ती नहीं होना। अब आपके ऊपर है। आप मारो... चाहे रखो। यह खून तो हमारे किये बन्द नहीं होता।

५–७ मिनिट में ही जैसे चमत्कार हुआ। खून एकदम ऐसे बन्द हो गया जैसे निकला ही न हो। बाद में जब डाक्टर मिले तो मुझसे उन्होंने पूछा–

"आप दवाखाना आए नहीं, खून कैसे बन्द हुआ ?"

उन को मैंने सारा हाल सुनाते हुए कहा–

"जब मैं सब उपाय करके थक गया तो मैंने हमारे सद्‌गुरु देव के फोटू के आगे प्रार्थना की। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार कर ली और खून बन्द हो गया।

डाक्टर बोले–

"आप ठीक कहते हैं। संतो में ऐसी शक्ति होती है, जो सर्वत्र सब समय सब कुछ कर सकती है। जहाँ हमारे मस्तिष्क और मन की भी पहुँच नहीं हो पाती।"

अब नाथाभाई लेखक को लक्ष्यकर कहने लगे–

स्वामीजी में श्रद्धा होने के बाद इस प्रकार कई अनुभव मेरे जीवन में हुए हैं। और अब तक तो पूज्यश्री के प्रति श्रद्धा में भी काफी वृद्धि हुई है। भले ही हमको चुनावों

में सफलता नहीं मिली उस समय, परन्तु हमको बड़ा ही आध्यात्मिक लाभ पूज्यश्री के सांनिध्य में आकर मिला है।

....भाई ! ब्रह्मनिष्ठ महापुरूषों की अगाध शक्तियों का गुणगान तो सभी शास्त्र करते हैं, परन्तु उनके प्रत्यक्ष सांनिध्य में आने से शक्तियों की विशेष अनुभूति होती है। मगर ऐसे महापुरूष मिलते कहाँ हैं ? आजकल तो धार्मिक प्रवृति भी एक धंधा बन गई है। कई ऐसे पाखंडी गुरू भोले लोगों को धोखे में रखकर अपना उल्लु सीधा करते हैं। ऐसे युग में परम ब्रह्मज्ञानी और साक्षात् परब्रह्मस्वरूप आशारामजी महाराज जैसे सद्‌गुरु का सांनिध्य मिलना हमारे जैसे लोगों के लिये परम सौभाग्य की बात है।

मनुष्य–स्वभाव की विचित्रता यह है कि प्रत्यक्ष की अवगणना (महत्व न देना) करता है और परोक्ष की पूजा करता है। घर से हजारों रुपये लेकर लोग काशी, हरिद्वार और मथुरा जाते हैं, परन्तु वहाँ भी ऐसे सच्चे पथ–प्रदर्शक गुरू मिलते नहीं जब कि यहाँ प्रत्यक्ष में ऐसे भगवान–स्वरूप सद्‌गुरूदेव उपस्थित हैं उनका हम पूरा फायदा उठा नहीं पाते, यह हमारी कमनसीबी ही है न ?....आप आश्रमवासी लोग धन्य हैं जो अपने जीवन का अधिकांश पूज्यश्री के सांनिध्य में ही....।

फकीरों की फेक्टरी में बनी फांकी

जयपुर जिले (राजस्थान) के डाक्टर चन्द्रमोहन पूज्यश्री

के दर्शनार्थ आश्रम में आते रहते हैं। एक बार आश्रम से लौटने से पूर्व वे स्वामीजी से जाने की आज्ञा लेने गए। उस समय स्वमीजी के पास कुछ था नहीं प्रसाद रूप में देने के लिये। एकाएक तुलसी के पौधे पर स्वामीजी की नजर पड़ी तो उसी के फूल तोड़ कर काले-काले कुछ बीज मसलकर निकाले और उन्हें ही डाक्टरसा० को देते हुए बोले-

"अच्छा....तो आप जा रहे हैं? अभी कुछ है भी नहीं पास में देने को। आप तो डाक्टर हैं, कई मरते हुओं को बचाते हैं। (विनोदपूर्वक) हम फकीरों के पास क्या है जो आपको देवें?....अच्छा ये ही ले जाओ, कहीं काम में लगाना।"

डाक्टर चन्द्रमोहन कुछ बोले नहीं, केवल मुस्कराने लगे। जब वे प्रणाम करके जाने लगे तो स्वामीजी पुनः बोले-

"हाँ, यह याद रखो-सेवा में बड़ी शक्ति है। जो कार्य करो, सेवा भाव से किया करो। फिर देखो, तुम्हारे हाथ से रोगी कैसे फटाफट ठीक होते हैं।.... अच्छा जाओ।"

लेखक डा० चन्द्रमोहन को जाते हुए देखता रहा।

कुछ ही दिन में डाक्टर साहब का पत्र आया। उसमें एक विचित्र घटना का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा था:

"यहाँ मेरे दवाखाने में एक गरीब पति-पत्नी आए। वे एक असाध्य रोग से पीड़ित थे। बड़े परेशान और थके स्वर में उन्होंने मेरे से प्रार्थना की कि डा० साहब हमारा रोग

ठीक कर दो, हमारा जीना हराम हो गया है। उनके पेट से खून गिरता था। मैंने देखा, मेरे पास उस समय ऐसी कोई औषधि नहीं है जो इस रोग में विशेष फायदा करें। तो मुझे उस समय पूज्य श्री की दी हुई प्रसादी याद आई। मैंने उसी में से कुछ दाने निकालकर पूज्यश्री का स्मरण कर सेवन की विधि बताते हुए दे दिये।

एक दो दिन में ही उनको आशातीत लाभ हुआ। मैं भी जानता था कि वह केवल प्रसादी थी, कोई किसी की फेक्टरी में बनी हुई औषधि तो थी नहीं, फिर भी ऐसा चमत्कार उसने दिखाया! वे पति-पत्नी आकर मेरे चरणों में गिर पड़े और बोले कि डा० साहब यह रोग कईयों को दिखाया, मगर कोई ठीक नहीं कर पाया। आपके हाथ में जादू है...मगर यह केवल मैं ही समझता था कि यह जादू वस्तुतः किसके हाथ में है!"

और उसके बाद एक दिन जब डाक्टर साहब आश्रम में आये तो लेखक ने उनसे उस प्रसंग की बात की तो वे फिर से सारा प्रसंग सुनाकर बोले-

"भाई! पू. स्वामीजी जैसे संत हमने नहीं देखे। जब वे हरिद्वार आदि जावें तो हमें अवश्य लिखें। हम उन्हें कुछ दिन हमारे घर जो रास्ते में पड़ता है, रोकेंगे। वहाँ बहुत लोग उनको मानने लगे हैं। और उस दिन के बाद तो स्वामीजी के जन्मदिन पर हर वर्ष फ्री औषधालय चलाता

हूँ। पूज्यश्री के सत्संग की पुस्तकें बंटवाता हूँ। बापू की हम पर बड़ी कृपा है।

आज भी जब वे याद आते हैं तो....!

एक गुजराती मासिक पत्रिका के भूतपूर्व सम्पादक यशरायभाई कभी कभी आश्रम आया करते हैं। उन्होंने पूज्यश्री के बारे में पहले बहुत सुना हुआ था, मगर उनके दर्शन नहीं किये थे। एक बार संयोगवशात् लेखक के साथ ही उनका आश्रम में आना हो गया। उस दिन वे बीमार भी थे।

एक दिन लेखक ने उनसे पूज्यश्री से उस प्रथम मिलन का अनुभव पूछा तो उन्होंने खास कुछ बताया नहीं, मगर बाद में उन्होंने एक छोटी सी पुस्तिका लिखी उसमें वह अनुभव उन्होंने लिपिबद्ध कर दिया। उसमें वे लिखते हैं:

मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। पेट में गड़बड़ थी और मन भी बेचैन था। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि ज्यों ज्यों मैं मोटेरा आश्रम के नजदीक पहुँच रहा था त्यों त्यों कुछ नवीन ताजगी, शांति और स्वस्थता अनुभव कर रहा था। और पूज्यश्री आशारामजी महाराज के दर्शन की इच्छा भी तीव्रतर होती जा रही थी।

जब आश्रम में पहुँचा तो वहाँ सत्संग चालू था। संत श्री की घन-गंभीर आवाज सबके हृदय को आकृष्ट करती हुई सत्संग भवन एवं उसके बाहर आश्रम के प्रांगण में

गूंज रही थी। सभी मंत्रमुग्ध हो उनके अमृतवचनों का पान कर रहे थे।

पू० स्वामीजी के सम्मुख ही भक्तजनों के बीच जाकर मैं बैठ गया। पूज्यश्री के दर्शन मात्र से मेरा हृदय उमंग से हिलोरे लेने लगा। किसी अजीब चेतना की अनुभूति होने लगी। स्वामीजी के मुखमंडल पर अध्यात्मिक तेज और अगाध शांति के मुझे दर्शन हुए। और सौम्यचन्द्र समान उन दिव्य महापुरुष ने जब मेरे हाथ को बातचीत के दौरान स्पर्श किया तो यकायक मुझे लगा जैसे मैं एक महासागर हूँ और उछल रहा हूँ। मेरा रोम-रोम, मेरा समस्त व्यक्तित्व उन महापुरुष की तरफ खिंचा जा रहा है।...मेरी बाहरी चेतना लुप्त होती जा रही थी। मुझे तेज प्रकाश का अनुभव हुआ। मुझे लगा जैसे मैं शरीररूपी स्थूलता से बाहर निकल गया हूँ।

मेरे कोई आँख नहीं, कान नहीं, हाथ-पैर नहीं-मैं अंगविहीन स्थूलताविहीन, वायुस्वरूप, तेजस्वरूप, कांतिमय, दिव्य और बिना आधार के हवा में जैसे तैर रहा था। भीतर 'ओ...म् ओ....म्' की गंभीर ध्वनि और सहस्रों घंटियों का सुरीला नाद गूँज रहा था। दूर दूर से वंशी का मधुर स्वर भी सुनाई दे रहा था। और यकायक दोनों भोहों के बीच अति तीव्र चमकीला प्रकाश जगमगा उठा। उस प्रकाश के घेरे में स्वामी आशारामजी दिखे और तुरन्त अदृश्य हो गए। उसी जगह श्रीकृष्ण के दर्शन होने लगे जो

स्वयं 'ओ....म्' का उच्चार कर रहे थे। मेरा मुझे कुछ भी भान नहीं था। भीतर जैसे में पूज्य स्वामीजी एवं भगवान श्रीकृष्ण से एकाकार हो गया था।

और जब मैं इस सारी स्थिति से मुक्त हुआ तो मैंने देखा कि यह सब अनुभव कुछ ही सैकंडों में हो चुका है, क्योंकि अभी अभी ही तो उन्होंने मेरा हाथ छुआ था और मैं अभी उन्हें प्रणाम करके वहीं बैठने जा रहा था–उनके श्री चरणों में।

इस आधी मिनट के भीतर ही इस अनुभव के साथ ही मेरा शरीर हलका फूल जैसा हो गया। मेरी अस्वस्थता, मेरी बेचैनी दूर हो गई थी और मैं बहुत ताजगी अनुभव कर रहा था। फिर पूज्यश्री ने मुझे प्रसाद देते हुए कहा– 'तुम्हारी तबीयत ठीक हो गई होगी। यह प्रसाद खा लेना।' मेरी तो आँखों से अहोभाव के आँसू बहने लगे उन महापुरुष की अपार करूणा के प्रति।

कुछ दिन बाद मुझे जब आश्रम के एक साधक ने पूज्यश्री के सम्मुख उस दिन के अनुभव के बारे में पूछा तो मैंने यह सब विस्तार से न बताते हुए इतना ही कहा कि भाई वह दिन तो मेरा बड़ा सौभाग्यशाली दिन साबित हुआ। पूज्यश्री के चरणों में बैठते ही मुझे मेरे भीतर रीढ़ की हड्डी के सहारे कुछ शक्ति सरकती हुई लगी। शरीर में झनझनाहट और कुछ स्पन्दन होने लगा और फिर आनन्द ही आनन्द का अनुभव होने लगा। सारा वर्णन शब्दों में नहीं कर सकता, मगर

ऐसा लगा कि वह कोई विशेष ध्यान की दुर्लभ अवस्था थी जो महापुरुषों द्वारा प्रसादरूप में पाई जाती है। जिसकी अनुभूति के लिये योग-साधकों को जंगलों और पहाड़ों की कंदराओं में वर्षों तक भटकना पड़ता है।...और उस अहा! क्या उनकी हृदय मोहक मुस्कान और प्रेम भरे विशाल नेत्र थे! आज भी जब वे याद आते हैं तो हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगती हैं। और दूसरे दिन तो मेरी वह बीमारी भी पूर्णतः गायब हो चुकी थी।

हमने वह अक्षय-पात्र देखा!

"मैंने कई अक्षयपात्रों एवं द्रौपदी के निरंतर बढ़ते हुए और न खत्म होने वाले चीर (वस्त्र) के बारे में सुना था, परन्तु विश्वास नहीं कर पा रहा था। यह सब कैसे होता होगा? मगर उस दिन के अनुभव ने मुझे इन सब घटनाओं के बारे में विश्वास करने को मजबूर कर दिया और साथ ही इस गर्व का अहसास भी हुआ कि हमको एक ऐसे महापुरुष की छत्रछाया मिली है जो आज भी ऐसी घटनाएं सर्जन करने का अमित सामर्थ्य अपने भीतर रखते हैं।"

ये शब्द दिलीप भाई जोशी ने लेखक को आश्रम में आकर बड़े उत्सास से कहे। उनके साथ उनके मित्र इंजिनीयर भी थे। दिलीपभाई एक विद्यालय में प्राध्यापक हैं और साबरमती में ही रहते हैं। जब आश्रम में साधकों

में ध्यान होता है तब ये भी गहरे ध्यान में गोते लगाते हैं। १७ अप्रेल १९७९ को स्वामीजी के जन्मदिन पर उनको जो विशेष अनुभव हुआ, उसी के बारे में वे बता रहे थे। लेखक के पूछने पर उन्होंने आगे बताते हुए कहा–

उस दिन मैं अपने इन्हीं मित्र इंजिनीयर जयंतभाई के साथ आश्रम में पहुँचा था। थोड़ी देर बाद ही पूज्यश्री अपनी कुटीर से बाहर पधारे। उनकी विशाल शीतल आँखें बता रही थी कि वे अभी–अभी ध्यान की मस्ती में से उठकर बाहर पधारे हैं। जब सत्संग भवन में हम जाकर उनके सम्मुख बैठे तो स्वामीजी ने हमको कहा कि आज के दिन की खुशहाली में 'पूरा भोजन' मोटेरा गाँव के एवं साबरमती के विद्यालयों के बच्चों को कराया जाय अथवा उनमें प्रसाद बांटा जायं। मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से उनकी बात ठीक से नहीं समझ सका और मैंने कह दिया कि भोजन इतने अल्प समय में तो बन नहीं सकेगा, इसलिये प्रसाद वितरण ही ठीक रहेगा।

पूज्यश्री ने हमारी बात मान्य रखते हुए कहा–

"अच्छा तो जाओ और दोनों स्कूलों में अपने हाथ से ही प्रसादी बांट आओ।"

स्वामीजी ने नारीयल और मिश्री की प्रसाद दो बाल्टियों में भरवाकर हमें दिखवाई, मगर वह देखकर हमें बड़ा गहरा

संशय हुआ भीतर ही भीतर कि इतनी सी प्रसाद दो स्कूलों के लिये तो बहुत ही कम पड़ेगी!

खैर, मैं और इंजिनीयर दोनों मोटेरा की स्कूलों में गए और एक बाल्टी तो वहाँ की स्कूलों में ही बाँट दी और दूसरी प्रसाद की बाल्टी लेकर हम साबरमती की एन एम. हाईस्कूल में पहुँचे।

यहाँ हमने हाथ भर–भर कर प्रसाद बाँटना शुरू किया, क्योंकि हमें दो स्कूलों में ही बाँटने को कहा हुआ था। मगर सब बच्चों एवं शिक्षकों में बाँट देने के उपरांत बची हुई आधी बाल्टी प्रसाद लेकर हम 'साबरमती कन्या विद्यालय' में गए। यहाँ भी हमने खुले हाथों बालिकाओं एवं शिक्षिकाओं में प्रसाद बांटी।

बची हुई प्रसाद को देखकर उसे भी समाप्त करने के इरादे से हम आराधना स्कूल में पहुँचे। वहाँ भी हाथ भर–भर कर प्रसादी वितरण की और पास से गुजरते हुए काफी लोगों में भी बांटी।

फिर भी करीब आधी बाल्टी प्रसाद बचा हुआ देखकर हम लोग जवाहर चौक की म्युनिसीपल स्कूल की ओर चले। सोचा, यहाँ प्रसादी पूरी समाप्त कर आश्रम पहुँच जाएँगे। इस स्कूल में अब तक की स्कूलों की अपेक्षा सबसे अधिक संख्या छात्रों की थी। हमें यहाँ संशय हुआ कि आधी

बाल्टी प्रसाद यहाँ पूरा नहीं पड़ेगा । परन्तु सबमें बाँट देने के पश्चात् हमने जब बाल्टी को आधी यों की यों भरे हुए पाया तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा । मैं और इंजिनीयर एक दूसरे की ओर आवाक् हो देखते ही रह गए कि यह सब कैसे हुआ ?

साढ़े दस बजे से हमने वितरण प्रारंभ किया था और अभी दोपहर का डेढ़ बज चुका था । प्रसादी बांटने वाले हम लोगों के पेट में चूहे कूद रहे थे । हम भी थक गए थे । ऊपर से अप्रेल का सूर्य भीषण गर्मी बरसा रहा था । अब हमने बाल्टी जल्दी खाली हो, इसलिये रास्ते में से गुजरने वाले सब लोगों को, एक जगह काम करते हुए सब मजदूरों को, आस पास की दो-तीन हाऊसिंग सोसाईटियों में भी पहले से भी अधिक हाथ भर-भर कर प्रसाद दिया ।

मगर वाह री करामाती बाल्टी ! उसका तो पेंदा ही नजर नहीं आया !

अब हमने बाल्टी जल्दी खाली हो इसके लिये एक और प्रयास किया । हमने 'हाई-वे' रोड़ पर खड़े होकर सब गुजरने वाले लोगों को पूरे हाथ भर-भर कर प्रसाद देना शुरू किया, फिर भी बाल्टी खाली न हुई । अब तो हम वस्तुतः बड़े ही पशोपेश में पड़ गए कि ऐसी आधी भरी हुई बाल्टी लेकर वापस आश्रम में भी कैसे जाएं ? विचित्र धर्म-संकट खड़ा हो गया था हमारे सामने !

लेखक दिलीप भाई एवं इंजिनीयर की ये बातें बड़े ही ध्यान से सुन रहा था । उसे यह विचार आया कि ये दोनों लोग पढ़े-लिखे हैं और इनका प्रत्यक्ष अनुभव ये बता रहे हैं । इसमें कहीं शंका की गुंजाईश नहीं है । क्या ये देख नहीं सकते थे कि बाल्टी में से प्रसाद निरंतर निकलती जा रही है, तो घुसती भी तो जाती होगी । अन्यथा खाली क्यों नहीं होती ? और निकलते हुए दिखती है तो भीतर घुसते हुए क्यों नहीं दिखती ? आँखें बेचारी इन मामलों में कितनी लाचार हैं.... और मनुष्य की बुद्धि भी !

दिलीप भाई और इंजिनीयर आगे बोले–

इस सब लीला को देखकर स्वामीजी के प्रति कैसा 'अहोभाव' पैदा हुआ, उसका तो हम वर्णन भी नहीं कर सकते । उस समय हमने थक कर पूज्यश्री को याद किया और मन ही मन प्रार्थना कीः

" गुरुदेव ! यह प्रसादी किसी भी प्रकार अब तो पूरी बंट जाय, ताकि हम जल्दी आश्रम लौट सकें । "

फिर हम रोड़ के आस-पास आई हुई कुछ गरीब बस्ती में गए और दूध पीते बच्चों से लेकर दांत टूटे बूढों तक में दो-दो बार प्रसाद 'लुटाया'-तब जाकर बाल्टी खाली हुई । लगता था कृपा करके पूज्यश्री ने हमारी प्रार्थना सुन ली थी । इस समय ढाई बज चुके थे ।

वाह, कैसी है संतों की उदारता ! हमने जो कम प्रसाद देखकर शंका की थी वह इस घटना से चूर-चूर हो गई और हमें संतों की भीतरी महानता की जो एक झलक मिली, वह हमारे आध्यात्मिक-पथ में आगे बढ़ने के साहस को और मजबूत कर गई !

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महान् गुरुदेव के श्री चरणों में हमारे बार बार वन्दन हों !



आज भी सच्चे संत दुनिया में हैं

पूज्य स्वामीजी वर्ष भर में एक बार गर्मी के दिनों में दो-तीन महीनों के लिये मा. आबू, हरिद्वार, हिमालय की तरफ निकल पड़ते हैं। हरिद्वार में 'घाटवाले महाराज' के पास पूज्यश्री थोड़े दिन विराजते हैं। घाटवाले महाराज केवल एक कंतान (बारदाना) का टुकड़ा कमर पर लपेटे रहते हैं, इसलिये बाहर से उनकी महानता कोई नहीं नाप पाता, परन्तु वे एक मस्त ब्रह्मनिष्ठ फकीर हैं। इसी प्रकार ताजपुरा (नारायण-धाम, बड़ोदा) के पूज्य नारायण स्वामी, मोटी कोरल वाले (अभी नारेश्वर में) पूज्य लालजी महाराज बम्बई के पूज्य अखण्डनन्दजी सरस्वती, कैलाश पीठाधीश्वर महामण्डलेश्वर स्वामी श्री विद्यानंदगिरिजी महाराज (ऋषिकेश) वृन्दावन के पूज्य श्री वैरागी बाबा जैसे अन्यान्य महान् संतों से पूज्य श्री का मिलना होता रहता है। इनमें से लगभग सभी एक बार तो आश्रम में भी पधार चुके हैं। आश्रम के एकांत एवं रमणीय वातावरण की सभी ने साधना की दृष्टि से भूरी भूरी प्रशंसा की है।

मगर जो भी हो, जब पूज्य श्री बाहर पधारे हुए होते हैं तब नियमित आते रहने वाले भक्तों के चित्त उदास हो जाते हैं। फिर आश्रम में आने वाले भक्त एवं साधक या तो किसी एकांत स्थान में बैठकर ध्यान करते हैं या सेवाकार्य करते हैं और नहीं तो कहीं बैठकर पूज्यश्री के आत्मीय और प्रेमपूर्ण व्यवहार को अपनी आपस की चर्चाका विषय

बनाकर उनकी याद में आँखें गीली करते हैं और अहोभाव जताते हैं।

इसीप्रकार के इसी जून महीने में जब पूज्य श्री बाहर पधारे हुए थे, लेखक आश्रम में एक जगह बैठा हुआ था कि किसी ने आकर 'हरि ॐ' कहा। लेखक ने उनकी ओर देखा–ये चन्द्रकान्तभाई दवे थे जो कामदार राज्य बीमा कोर्पोरेशन, गुजरात स्टेट के एडवाईजरी बोर्ड के मेम्बर हैं और कुछ सामाजिक कार्यों में आगेवान भी रहते हैं।

उन्होंने पूछा–"स्वामीजी....?"

लेखक–"अभी तो बाहर पधारे हुए हैं। इन दिनों प्रायः पूज्य श्री....।"

चन्द्रकांत–"ओह!....खैर आज पूज्य श्री के दर्शन हमारे नसीब में नहीं थे।"

फिर बातचीत के दौरान इन्होंने पहले पहल आश्रम में कैसे आना हुआ यह बताते हुए कहा–

१९७६ की दीवाली की बात है। मेरे मित्र कोर्पोरेटर श्री छनालाल जोषी ने मुझे संत श्री आशारामजी की २–३ पुस्तकें पढ़ने को दी। पहले तो ये पुस्तकें पढने का मन नहीं हुआ। दो दिन बाद ये पुस्तकें मैंने हाथ में ली और पढ़ी तो मैं रुक नहीं सका और तुरंत जिज्ञासावश स्कूटर लेकर स्वमीजी को मिलने आश्रम पहुँच गया।



आश्रम के किनारे को स्पर्श कर बहती हुई साबरमती नदी (अभी घाट भी बन चुका है इसमें)



आश्रम का कल्पवृक्ष 'बड़ बादशाह' (बटवृक्ष के सामने ही पूज्यश्री की कुटीर का द्वार दिखाई पड रहा है)



बाल योगी
'नारायण स्वामी'
(एक महान भावी
व्यक्तित्व)



'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु...' गुरु वन्दन करते हुए
बाल योगी नन्हे नारायण

प्र सा द की लू ट



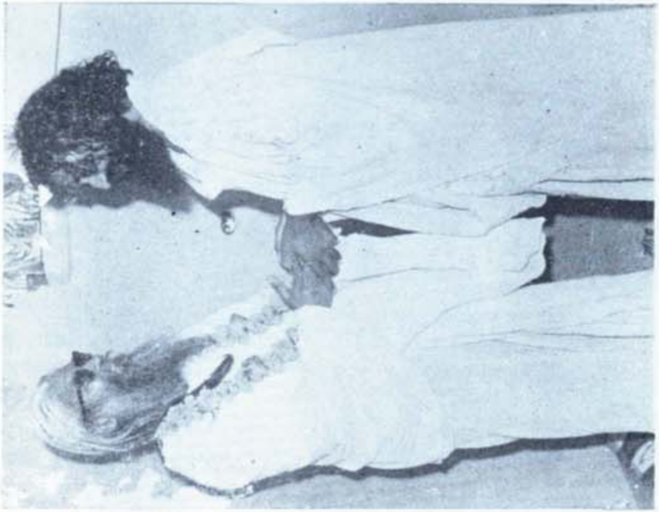
खा के करेगा खुशियां,
नहीं तो ढूंढेगा दर दर दर ॥



कोई खावे प्रसाद प्रेम का,
तो मैं देखा भर भर भर ।



मोटी कोरल में पूज्यश्री लालजी महाराजके
साथ विनोदी-व्यवहार करते हुए पूज्यश्री

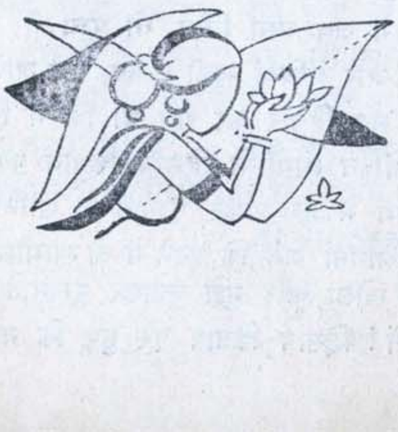


ताजपुरा (बडौदा) के संत
पूज्य नारायण स्वामी के साथ

बचपन से ही सच्चे संतों का दर्शन करना और ढोंगी संतों को प्रश्न पूछ पूछ कर हैरान करना–यह मेरी आदत रही है। अतः मन ही मन विचार आया कि चलें, जरा देखें तो सही स्वामीजी को भी!

परन्तु आश्रम में पहुँच कर स्वामीजी के दर्शन करते हो मैं चित्र-लिखित पुतलीवत् मंत्रमुग्ध हो गया। मैं अपना भान ही भूल गया। आज भी सच्चे संत दुनिया में हैं–इस बातका प्रत्यक्ष अनुभव उनको देखकर मुझे हुआ। उस समय मेरे शरीर के अणु-अणु में विद्युत-करन्ट के जैसे हल्के-हल्के झटके लगते रहे। मैं अपने आपको बहुत प्रयत्न पूर्वक काबू में रख सका।

पूज्य स्वामीजी के दर्शन से मुझे आत्मशांति मिली है। इससे अधिक तो स्वयं अनुभव करके ही किसी को ख्याल आ सकता है।....



आसन-प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएं करने से शरीर की स्थूलता घटती है और मन शांत होता है। परन्तु साधक योगमार्ग में ठीक से आगे तो तभी बढ़ सकता है जब उसे कोई पूर्ण योगी गुरु मिले। आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि आपको संत आशारामजी जैसे शक्तिपात करने में कुशल एवं समर्थ ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिले हैं।

श्री बलरामदासजी महाराज

लोदरा (गुजरात)

मेरे अध्ययनकाल में काफी समय से मुझे मेरी साधना में योग्य मार्गदर्शन देवें ऐसे महापुरूष की आवश्यकता मैं अनुभव कर रहा था। एक बार किसी के कहने से मैं मोटेरा आश्रम में स्वामीजी के दर्शन के लिये आया। स्वामीजी के दर्शन मात्र से मेरे हृदय के तार झंकृत हो उठे और मैंने उनके प्रति एक अलौकिक आकर्षण का अनुभव किया। कुछ ही समय बाद आश्रम में आयोजित ध्यानयोग शिविर में जब भाग लिया तो पूज्य श्री के सांनिध्य से हृदय की और ग्रंथियां खुली। एक बार आश्रम में घूमते हुए मन ही मन विचार कर रहा था कि मैं किस प्रकार अपने से संबंधित लोगों से हिसाब-किताब पताकर (पूरे करके) आश्रम में ही आकर पूज्यश्री के सांनिध्य में रहते हुए जमकर साधना करुं कि इतने में तो स्वामीजो ने कुटिया का दरवाजा खोला और मुझे बुलाकर मुस्कराते हुए पूछा-

"क्यों! हिसाब-किताब पूरे हुए कि नहीं?"

सुनकर मैं तो चकित रह गया! अन्दर ही प्रश्नों का समाधान भी मिल गया था। मैंने पूज्य श्री के चरणों में प्रणाम किया - और तब से परमपूज्य संत श्री आशारामजी महाराज की दिव्य प्रेरणा से मेरे जीवन का पल-पल पोषित हो रहा है।

श्री करसनभाई पटेल, गुजरात युनिवर्सिटी

एम. ए. (तत्त्वज्ञान), रिसर्च स्टुडन्ट

परमपूज्य गुरु देव की उपस्थिति में क्या बोलूं, समझ में नहीं आता। कोर्टों में तो बहुत बोला हूँ, परन्तु यहाँ बोलने की सामर्थ्य नहीं जुटा पा रहा हूँ। (अवरुद्ध कंठ से) समर्थ गुरू न मिले तो मनुष्यों को कितने कितने जन्म लेने पडते हैं-इस भवसागर से तरने के लिये!

मैं बहुत फिरा हूँ सद्‌गुरु की खोज में। श्री बजरंग दासजी महाराज, रणछोड़दासजी महाराज, शेरडी के सांई बाबा, नित्यानंद स्वामी आदि के दर्शन किये हैं। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण भाषण नहीं कर रहा हूँ। यह मेरे हार्दिक भावों का प्रगटीकरण है। परंतु अब मेरी खोज पूरी हो गई है। परमपूज्य स्वामी आशारामजी महाराज की मुझ पर अनन्य कृपा बरस रही है...। कुछ भी कहें, आप सब लोग-मेरे लिये तो स्वामीजी साक्षात् भगवान हैं।

श्री हँसमुखलाल सी. शाह

एम. ए. एल.एल. बी.

भूतपूर्व जज, वड़ौदा



चिंतन-पराग

[पूज्य श्री के उपदेशों में बार बार एक गर्जना का स्वर सुनाई पड़ता है–'निर्भय बनो।' चाहे कैसा भी निर्बल मनोबल वाला व्यक्ति हो, पूज्य श्री के सांनिध्य में आते ही अपने में एक अदम्य आत्मिक–बल का अनुभव करने लगता है। यहाँ पूज्य श्री के अपार उपदेशों में से इसी भाव को व्यक्त करने वाला 'चिन्तन-पराग' दिया जा रहा है, जिसको बार-बार पढ़ने से कायरता अथवा हीनभाव दूर होकर भीतर नवीन आत्मिक उत्साह का जागरण हो जाता है।]

० अपने आप को औरों की दृष्टि से मत तोलो, बल्कि अपने आप में देखो। आपका अपना आप आपको बार बार यह उपदेश देगा कि सारे संसार में आप सब से महान (आत्मा) हो।

० निश्चय समझो कि यदि तुम अपने ऊपर भरोसा रख सकते हो तो कहीं भी सफलता पाओगे। तुम्हारे लिये कुछ भी असंभव नहीं है।

० अपने आपको परिस्थिति का गुलाम कभी मत समझो। तुम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हो।

० चाहे कैसा भी प्रसंग आ जाय, अपने को हर्ष-शोक के वशीभूत नहीं होने देना। सदैव अपने आत्मस्वरूप का चिंतन करो–'मैं अजर हूँ, अमर हूँ, मेरा जन्म नहीं, मेरी मृत्यु नहीं, मैं निर्लिप्त आत्मा हूँ।' इसी भाव में निरंतर रहते हुए कार्य किये जाओ।

० भयंकर दुःख, शोक, प्रलय और यहाँ तक कि महाप्रलय के समय भी जो छाती ठोक कर खड़ा रह सके ऐसे वीर भाव के स्वामी बनो.

० अमुक क्या कहता है या क्या कहेगा–इसकी तनिक भी चिंता किये बिना अपने साधना पथ पर बढ़ते चलो। लोग कब तक तुम्हारे पीछे कहते रहेंगे और कह-कह कर क्या कहेंगे? जो भी कहेंगे वह तुम्हारे शरीर, मन और बुद्धि तक ही तो?...और वह तुम हो नहीं। अतः उनके कहने की परवाह किये बिना साधना करते रहो–निश्चित ही अपने गंतव्य तक पहुँच जाओगे। यदि लोगों की ही सुनते रहे या सुनाने के लिये रुके तो भटक जाओगे।

० लौकिक पदार्थ कितने ही सत्य भासें, वे सत्य नहीं हैं। लौकिक परिस्थितियाँ कितनी ही भयंकर और सत्य भासें वे सत्य नहीं है–फिर इन सबके बारे में चिन्तन करके क्यों व्यर्थ परेशान होते हो....? यह सब सपना है। इसे बीतने दो। आप दृष्टा बन जाओ। सब भयपूर्ण परिस्थितियाँ तुम्हारे दृष्टा भाव में आने से विलीन हो जाएगी–तुम्हारा दृष्टिबिन्दु बदल जाएगा।...तुम देखोगे कि इस जगत में

तुम्हारा कभी कोई भी न बिगाड़ सका है, न बिगाड़ सकता है, न बिगाड़ सकेगा। क्योंकि तुम इन सबके परे हो–शुद्ध सच्चिदानन्द घन हो। तुम्हें भय कैसा...? तुम्ही सत्य हो, असत्य तुम्हारा क्या करेगा ? यह सब तुमसे भिन्न नहीं है–तुम्हारा ही खेल है।

० अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ। चाहे आप उच्च पद पर हों या निम्न पद पर, इसकी तनिक भी पर-वाह मत करो। अपनी दिव्यता को सदैव स्मरण रखो। अपने को हीन कभी मत अनुभव करो।

० ज्योंही आपने क्षणिक भौतिक पदार्थों में सत्य बुद्धि की–उनमें आसक्ति की उन्हीं की, इच्छा की तो समझो आपने अपने लिये दुःख–दर्द–चिन्ता आदि को स्वयं ही निमंत्रण दे दिया। इसलिये बाहरी नाम–रूपों पर अपना समय और शक्ति कभी नष्ट नहीं करनी चाहिये।

० संसार के सारे भेदभाव, परिस्थितियाँ मेरी सृष्टि हैं– मेरी करतूत है। इसके सिवाय कोई चीज नहीं है। दुनियाँ मेरा संकल्प है। मैं ईश्वरों का भी ईश्वर हूँ–यह सत्य है। ....ऐसा चिंतन करने से सब भय भाग जाते हैं।

० भूतकाल में जो बीत चुका है उसके लिये दुःखी न बनो, भविष्य में जो होने वाला है उसकी चिन्ता न करो, वर्तमान में–प्रत्यक्ष वर्तमान में राग–द्वेष रहित होकर विचरो यही जीनेका सबसे सुन्दर ढंग है।

० अपने भीतर के परमेश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करो। अनेक मतों वाले जन–समूह का आप किसी भी हालत में संतुष्ट नहीं कर सकोगे। जो अपने को भूलकर दूसरों को खुश करने अथवा संतुष्ट करने में लगता है, वह न दूसरों को संतुष्ट कर पाता है न स्वयं को। जो स्वयं को सुधार लेता है, उसे पता लग जाता है कि गलती मेरी ही थी जो दूसरों में दोष देखता था।

० जब आपका 'अपना आप' प्रसन्न है–तब सारा जहाँ अवश्य संतुष्ट होगा।

० किसी भी परिस्थिति में ऊपरी कठोरता और भयान-कता में भयभीत नहीं होना चाहिये। कष्टों के काले से काले मेघों के पीछे पूर्ण प्रकाशमय, एकरस, परम सत्ता सूर्य की भांति सदा ही विद्यमान है।

० जिस क्षण तुम सफलता की ओर पीठ फेर लोगे, जिस क्षण तुम परिणामों की चिंता छोड़ दोगे, जिस क्षण तुम अपने वर्तमान कार्य में अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर लोगे–उसी क्षण सफलता तुम पर न्योछावर हो जाएगी, बल्कि तुम्हारे पीछे–पीछे दौड़ेगी। इसलिये सफलता के पीछे मत भागो। सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ और तभी सफलता आपकी दासी बन जाएगी।

० जब–जब भी तुम अपने आपको रुग्ण और निर्बल अनुभव करो, मृत्यु का भय तुम्हें सताएं–तब तब अपने

अजर अमर आत्मस्वरूप का चिंतन करके निर्भय हो जाओ। भय मात्र अज्ञान है।

० जब-जब किसी भी प्रकार की कामना चित्त में उठकर उत्तेजित करें और सताने लगें, तब-तब अपने पूर्ण तृप्त आत्मस्वरूप का स्मरण कर उस दीनता से दूर हो जाओ।

पूज्यश्री की दिव्य वाणी के अन्य अमृतरत्न